ट्राट्स्कीवादः एक निम्न-बुर्जुआ क्रांति विरोधी विचारधारा

कुछ लोग अधेड़ हो जाने पर भी दुधमुंहे बच्चे बने रहते हैं, वे वयस्क नहीं होते । राजनीति में और क्रांतिकारी राजनीति में भी कभी-कभी यह होता है। भारत की कम्युनिस्ट लीग (मा.ले.) में पहले एक सज्जन थे । वे बीस वर्षों से इस संगठन के साथ थे । 1998 की फूट के बाद वे इसके सामान्य परिषद वाले धड़े के साथ थे। एक दिन उन्हें इलहाम हुआ कि भारत के माओवादी (मार्क्सवाद-लेनिनवाद- माओ विचारधारा मानने वाले लोग) ट्राट्स्की और ट्राट्स्कीवाद के बारे में जो कहते हैं वह सही नहीं है। उन्हीं के शब्दों में उन्होंने जब ट्राट्स्की की रचनाओं का अध्ययन शुरू किया तो वे आश्चर्यचकित रह गये। उन्हें लगा कि ट्राट्स्की और ट्राट्स्कीवाद बिलकुल भी वैसा नहीं है जैसा कि माओवादी कहते हैं। और वे रातों रात ट्राट्स्कीपंथी बन गये। वे अपने संगठन से विरत हो गये।

ट्राट्स्की की रचनाओं का अध्ययन करके जब ये सज्जन क्रांतिकारी राजनीति में वयस्क हुए तो इन्होंने पाया कि एक देश में समाजवाद के निर्माण के सवाल पर ट्राट्स्की और स्टालिन में चली बहस में ट्राट्स्की के मुकाबले स्टालिन गलत थे और ट्राट्स्की सही था। इसी तरह उन्होंने पाया कि समाजवादी समाज की समस्याओं के बारे में ट्राट्स्की ने माओ से पहले काफी गहन चिन्तन-मनन किया था और कई ऐसी बातें कही थी जो बाद में माओ ने कहीं। साथ में उन्होंने यह पाया कि ट्राट्स्की समस्या के सही समाधान तक नहीं पहुंच पाया जबकि माओ पहुंच गये और उन्होंने महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रांति का सिद्धान्त पेश किया तथा चीन में उसे व्यवहार में उतारा। उन्हें इस बात पर आश्चर्य भी हुआ कि माओ ने ट्राट्स्की की इस सम्बन्ध में कही गयी बातों पर कोई टिप्पणी क्यों नहीं की और वे ट्राट्स्की और ट्राट्स्कीवाद को बाकी स्टालिनपंथियों की तरह एक वाक्य में खारिज करते रहे। इस तरह क्रांतिकारी राजनीति में वयस्क होकर ये सज्जन रातों रात

मार्क्सवाद-लेनिनवाद- ट्राट्स्कीवाद-माओवाद को मानने वाले हो गये और इस तरह एक अद्भुत किस्म के मार्क्सवाद का आविष्कार करते हुए कम्युनिस्ट क्रांतिकारी खेमे से बाहर हो गये।

कम्युनिस्ट क्रांतिकारी खेमे से बाहर हो जाने के बाद इन सज्जन का व्यक्तिगत हश्र हमारे लिए दिलचस्पी की चीज नहीं है। लेकिन इन्होंने यह अद्भुत बाजीगरी दिखाते हुए सारे माओवादियों से अपील की है कि वे ट्राट्स्की के सवाल पर फिर से सोचें। उनका आग्रह शायद इसलिए भी है कि वे सोचते हैं कि उन्हीं की तरह बाकी माओवादी भी बिना अध्ययन किये केवल परंपरा या श्रद्धावश ट्राट्स्की और ट्राट्स्कीवाद को खारिज करते रहते हैं। कहीं दिल ही दिल में ये सज्जन यह भी सोचते हैं कि चूंकि माओवादियों के पास ट्राट्स्की की बातों का जवाब नहीं है इसलिए वे ऐसा व्यवहार करते हैं।

इन सज्जन ने ट्राट्स्की की किताब 'क्रांति के साथ गद्दारी' को आधार बनाकर एक छोटी किताब भी लिखी है जिसके अंत में उन्होंने माओवादियों से उपरोक्त आग्रह किया है या शायद प्रकारान्तर से उन्हें चुनौती दी है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, इन सज्जन के व्यक्तिगत राजनीतिक हश्र से हमारा सरोकार नहीं है। लेकिन चूंकि उन्होंने माओवादियों या माओ विचारधारा मानने वालों के सामने चुनौती फैकी है इसलिए हम इस लेख में ट्राटस्की वाद का जायजा लेंगे। और दिखायेंगे कि क्यों ट्राट्स्की तथा ट्राटस्कीवाद को खारिज करना ही सही कम्युनिस्ट पहुंच है, कि क्यों यह क्रांति विरोधी विचारधारा है।

I

सतत क्रांति का सिद्धान्त

ट्राट्स्की और ट्राट्स्कीवाद मूलतः और मुख्यतः अपने सतत् (permanent) क्रांति के सिद्धान्त के लिए जाना जाता है। ट्राट्स्की ने अपना सतत क्रांति सिद्धान्त 1905-07 की पहली रूसी क्रांति के दौरान विकसित किया था। स्वयं ट्राट्स्की के अनुसार उसने 1904-06 के दौरान इस पर चिन्तन-मनन किया और इस सिद्धान्त पर पहुंचा। इसके आदि जनक पोलैंड के सामाजिक-जनवादी पारवुस थे। पारवुस के मूल विचारों को ट्राट्स्की ने ले लिया और उसे सतत क्रांति के सिद्धान्त के रूप में विकसित किया।

सतत क्रांति के ट्राटस्की के सिद्धान्त के अनुसार रूस का विकास कुछ इस तरह हुआ है कि वह असमान विकास और संयुक्त विकास कि फलस्वरूप सामाजिक– आर्थिक तौर पर यूरोप के विकसित देशों से काफी पीछे होते हुए भी क्रांति के लिए उनसे पहले परिपक्व हो गया है। लेकिन रूस के विकास की इस विशिष्टता के चलते ही रूस का बुर्जुआ वर्ग रूस की बुर्जुआ-जनवादी क्रांति का नेतृत्व करने में सक्षम नहीं है, उस क्रांति का जो कि इस समय एजेन्डे पर है। दूसरी ओर किसानों समेत कोई अन्य निम्न बुर्जुआ वर्ग भी ऐसा नहीं है जो रूस की आसन्न बुर्जुआ-जनवादी क्रांति का नेतृत्व कर सके। सारे निम्न बुर्जुआ वर्ग की और खासकर किसान वर्ग की यह विशेषता होती है कि वह राजनीतिक तौर पर एक पार्टी में संगठित नहीं हो सकता और न ही बुर्जुआ व सर्वहारा जैसे दो दृढ़ वर्गों के मुकाबले किसी स्वतंत्र नीति पर चल सकता है। या तो यह बुर्जुआ के साथ जायेगा या सर्वहारा के साथ। ऐसे में रूस की आसन्न क्रांति का नेतृत्व करने का कार्यभार रूस के सर्वहारा पर आ जाता है जो आबादी के हिसाब से संख्या में थोड़ा भले हो लेकिन पूंजीवादी उत्पादन व्यवस्था में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान होने के चलते, असल उत्पादक होने के चलते अपनी संख्या के मुकाबले कई गुना ज्यादा प्रभावशाली होता है। इस तरह रूस की जारशाही के मुकाबले एकमात्र सर्वहारा ही वह वर्ग बनता है जो सही मायने में क्रांतिकारी है और आसन्न क्रांति का नेतृत्व कर सकता है।

न केवल सर्वहारा रूस की क्रांति का नेतृत्व करेगा बल्कि क्रांति कुछ इस रूप में विकसित होगी कि यह तुरंत ही जनवादी क्रांति से समाजवादी क्रांति में रूपान्तरित हो जायेगी। रूस की क्रांति शुरू होगी बुर्जुआ-जनवादी क्रांति के रूप में लेकिन यह तुरंत ही समाजवादी क्रांति में रूपान्तरित हो जायेगी क्योंकि बुर्जुआ जनवादी कदमों को उठाने के लिए भी, बुर्जुआ-जनवादी कार्यभारों को अंजाम देने के लिए भी समाजवादी कदम उठाने जरूरी हो जायेंगे। मसलन मजदूरों के लिए आठ घंटे के कार्य दिवस को लागू करवाने के लिए भी पूंजीपतियों की फैक्टरियों को उनसे छीनना जरूरी हो जायेगा क्योंकि पूंजीपति आठ घंटे का कार्य दिवस लागू केरने के बदले लाकआउट कर देंगे। इस तरह रूस में बुर्जुआ-जनवादी क्रांति और समाजवादी क्रांति आपस में मिल जायेंगी, रूस की सामाजिक-जनवादी मजदूर पार्टी का न्यूनतम और महत्तम कार्यभार (बुर्जुआ जनवादी और समाजवादी क्रांति) दोनों एक साथ ही लागू होंगे। और यह बिना सर्वहारा की तानाशाही लागू हुए संभव नहीं है। यानी न केवल क्रांति का नेतृत्व सर्वहारा करेगा बल्कि क्रांति सफल होते ही सर्वहारा की तानाशाही कायम होगी और इसी के तहत बुर्जुआ-जनवादी क्रांति के कार्यभार अंजाम दिये जायेंगे जो कि समाजवादी कदमों के बिना संभव नहीं होंगे। इस तरह ये स्पष्ट ही है कि रूस में मजदूरों और किसानों के जनवादी अधिनायकत्व जैसी चीज की संभावना नहीं है।

क्रांति शुरू होने के समय समूचा किसान समुदाय सर्वहारा के पीछे चलेगा क्योंकि सर्वहारा उसे मुक्ति प्रदान करेगा लेकिन ज्योंही क्रांति परवान चढ़ेगी किसान सर्वहारा का साथ छोड़ देंगे क्योंकि बुर्जुआ-जनवादी कार्यभारों को पूरा करने के लिए जिन समाजवादी कदमों की आवश्यकता होगी किसान उसके विरोध में होंगे। इस तरह न केवल क्रांति में सर्वहारा वर्ग अकेला रह जायेगा बल्कि किसान समुदाय भी उसके खिलाफ खड़ा हो जायेगा। दूसरी ओर यह देखते हुए कि सर्वहारा वर्ग का लक्ष्य समाजवाद है, न तो जमीन का राष्ट्रीयकरण किया जायेगा और न ही समान भूमि वितरण। बल्कि इसके मुकाबले सामूहिकीकरण की ओर बढ़ा जायेगा।

क्रांति की इस अवस्था में जबकि क्रांति सम्पन्न होते ही न केवल सर्वहारा की तानाशाही कायम होगी बल्कि किसान भी इस क्रांति के खिलाफ खड़े हो जायेंगे, क्रांति तभी बच सकती है जब इसे बाहर से, विकसित यूरोपीय देशों में क्रांति से समर्थन मिले। रूस जैसे पिछड़े देश में मजदूरों और किसानों के बीच पैदा होने वाले अवश्यंभावी असमाधेय अंतरविरोध का समाधान यूरोपीय क्रांति में ही संभव है। केवल यूरोप के विकसित देशों में क्रांति हो जाने से उनके द्वारा मिलने वाली राजकीय सहायता से ही रूस की क्रांति टिकी रह सकती है और समाजवादी समाज के निर्माण की ओर बढ़ सकती है, अन्यथा यह कुचल दी जायेगी। अन्यथा वह बहुत थोड़े समय में ही खत्म हो जायेगी (बाहरी व भीतरी दोनों दबावों से)। इस तरह रूस की क्रांति की मुक्ति यूरोपीय क्रांति में ही है। दूसरी ओर रूस की क्रांति खुद वह आवेग प्रदान करेगी जो यूरोप में क्रांति को जन्म देगी। रूस यूरोपीय प्रतिक्रियावाद का गढ़ है और इसमें क्रांति यूरोप के विकसित देशों में क्रांति की ज्वालाओं का प्रज्ज्वलित कर देगी। इस तरह रूस की आसन्न क्रांति यूरोपीय क्रांतियों को जन्म देगी और ये यूरोपीय क्रांतियां अपनी बारी में रूसी क्रांति को स्थायित्व प्रदान करेंगी तथा राजकीय सहायता से रूस में समाजवादी समाज के निर्माण में मदद करेंगी, केवल जिस मदद से ही रूस में समाजवाद का निर्माण हो सकता है।

ट्राट्स्की की 1906 में लिखी किताब 'परिणाम और संभावनाएं' के ये उद्धरण इन बातों को अच्छी तरह प्रस्तुत करते हैं :

> " ... निस्संदेह ये बात सच है कि बहुत पहले उन्नीसवीं सदी के मध्य में ही राजनीतिक मुक्ति का सवाल समूचे राष्ट्र के दबाव के एकमत और दृढ़ कार्यनीति से हल नहीं हो सकता था। केवल अपनी वर्ग अवस्थिति और एकमात्र अपनी वर्ग अवस्थिति से संघर्ष के लिए ताकत ग्रहण करने वाली सर्वहारा की स्वतंत्र नीति ही क्रांति की विजय हासिल कर सकती थी।"(L.Trotsky,

'Result and prospects', Internet edition,File://G:\Library\ archive\Trotsky\Works\1993-tpv\rpo3, htm, Chapter-III, Page-6, अनुवाद हमारा)

" इस प्रकार काउत्स्की के अनुसार पूंजीवादी विकास में रूस बहुत नीचे है, राजनीतिक तौर पर यहां एक महत्वहीन पूंजीवादी बुर्जुआ और शक्तिशाली क्रांतिकारी सर्वहारा है इसका परिणाम ये है कि **सारे** रूस के हितों के लिए संघर्ष **इस समय देश में विद्यमान एकमात्र शक्तिशाली वर्ग** के जिम्मे आ पड़ा है–औद्योगिक सर्वहारा के जिम्मे। इसी कारण से औद्योगिक सर्वहारा का राजनीतिक महत्व बहुत बढ़ जाता है और इसी कारण से एकतंत्रवाद की जकड़ से रूस की मुक्ति, जो रूस का गला घोंट रहा है, **एकतंत्रवाद और औद्योगिक सर्वहारा की एक ही भिड़ंत** में रूपान्तरित हो गया है, ऐसी भिड़न्त जिसमें किसान काफी मदद तो दे सकते है लेकिन वे नेतृत्व नहीं प्रदान कर सकते।"(वही,Chapter-IV, Page-3,जोर मूल में)

" रूसी बुर्जुआ सारा क्रांतिकारी आधार सर्वहारा को समर्पित कर देगा। इसे किसान समुदाय पर क्रांतिकारी प्रभुत्व को भी समर्पित करना होगा। सर्वहारा को सत्ता हस्तांतरण की ऐसी स्थिति में किसान समुदाय को करने के लिए इसके सिवा कुछ नहीं रह जाता कि वह मजदूरों के जनवाद के निजाम के समर्थन में खड़ा हो जाय। इससे ज्यादा फर्क नहीं पड़ेगा यदि किसान समुदाय इसे उसी चेतना के साथ करते हैं जितनी से बुर्जुआ निजाम के पीछे खड़े हो जाते हैं। लेकिन किसानों का वोट हासिल करने के बाद प्रत्येक बुर्जुआ पार्टी केवल उनको धोखा और चकमा देने के लिए अपनी सत्ता का इस्तेमाल करती है तथा यदि बुरे से बुरा हो जाय तो एक दूसरी बुर्जुआ पार्टी के लिए रास्ता छोड़ देती है, किसान समुदाय पर निर्भर करते हुए सर्वहारा देहातों का सांस्कृतिक स्तर ऊंचा उठाने और किसान समुदाय की राजनीतिक चेतना बढ़ाने के लिए सारी जुगत करेगा। ऊपर जो कहा जा चुका है उससे स्पष्ट है कि हम 'सर्वहारा और किसान अधिनायकत्व' के विचार को किस रूप में देखते हैं। सवाल यह नहीं है कि हम इसे सिद्धान्तः सम्भव मानते हैं या नहीं अथवा इस तरह के राजनीतिक सहयोग की 'इच्छा करते हैं या नहीं करते हैं'। हम सीधा सा यह सोचते हैं कि इसे हासिल नहीं किया जा सकता–कम से कम प्रत्यक्ष तात्कालिक अर्थ में ।

" वस्तुतः इस तरह का गठबन्धन यह पूर्वकल्पना करता है कि बुर्जुआ पार्टियों में से एक का किसान समुदाय पर प्रभाव होगा या किसान समुदाय ने अपनी खुद की शक्तिशाली स्वतंत्र पार्टी बना ली होगी, लेकिन हम ने यह दिखाने का प्रयास किया है कि दोनों में से कोई भी संभव नहीं है।" (वही, Chapter-V, Page-3-4)

" सामंतवाद के खात्मे को **सारे** किसान समुदाय का समर्थन प्राप्त होगा क्योंकि यह बोझ से दबी हुयी श्रेणी है। एक प्रगतिशील आयकर को भी किसान समुदाय का भारी बहुमत समर्थन देगा। लेकिन कृषि सर्वहारा की रक्षा के लिए बनाये जाने वाले कानून को न केवल बहुमत का सक्रिय समर्थन हासिल नहीं होगा अपितु एक अल्पसंख्या इसका सक्रिय विरोध भी करेगी।

" सर्वहारा गांवों में भी वर्ग संघर्ष को बढ़ाने के लिए मजबूर होगा और इस तरह हितों की उस एकता को समाप्त कर देगा जो अपेक्षाकृत संकीर्ण सीमा के भीतर सभी किसानों में पायी जाती है। सत्ता पर कब्जा करने के पहले ही क्षण से सर्वहारा को गांव के गरीबों और धनिकों के बीच, कृषि सर्वहारा और कृषि बुर्जुआ के बीच के अन्तरविरोध में अपना समर्थन पाना होगा। जबकि किसान समुदाय की असमांगता सर्वहारा नीति के लिए कठिनाइयां पैदा करती है और उसके आधार को सीमित कर देती है, वर्ग विभेदीकरण का अपर्याप्त विकास किसान समुदाय के बीच उस वर्ग संघर्ष को बढ़ाने में बाधा पैदा करता है जिस पर कि शहरी सर्वहारा निर्भर कर सकता है। किसान समुदाय की आदिमता सर्वहारा के खिलाफ शत्रुवत खड़ी हो जाती है।

" किसान समुदाय का ठंडा पड़ जाना, इसकी राजनीतिक निष्क्रियता और इसके ऊपरी हिस्सों का और भी सक्रिय विरोध शहरों के बुद्धिजीवियों और पेटी बुर्जुआ के एक हिस्से पर असर डाले बिना नहीं रह सकता। (वही, **Chepter-VI, Page-2,** जोर मूल में)

" लेकिन जैसे ही सत्ता समाजवादी बहुमत वाली सरकार के हाथ में आ जाती है, हमारे कार्यक्रम का न्यूनतम और महत्तम में विभाजन (जनवादी और समाजवादी में विभाजन–संपादक) सिद्धान्त नहीं रह जाता।" (वही, **Chapter 1,Page-2,**जोर मूल में)

" और जैसे ही सत्ता समाजवादी बहुमत वाली सरकार के हाथ में आ जाती है, हमारे कार्यक्रम का न्यूनतम व महत्तम में विभाजन (जनवादी और समाजवादी–संपादक) सिद्धान्त और तात्कालिक व्यवहार दोनों के दृष्टिकोण से अपना सारा महत्व खो देता है। एक सर्वहारा सरकार किसी भी परिस्थितियों में अपने को इस सीमा में नहीं बांध सकती। आठ घंटे के दिन का ही उदाहरण लीजिये। यह किसी भी तरह पूंजीवादी सम्बन्धों का उल्लंघन नहीं करता और इसलिए सामाजिक जनवाद के न्यूनतम कार्यक्रम का एक मुद्दा बनता है। लेकिन जरा हम क्रांति के समय में, तीखे वर्ग संघर्ष के समय में इसको लागू करने के बारे में सोचें। इसमें कोई शक नहीं कि यह कदम पूंजीपतियों की ओर से लॉकआउट और फैक्टरियां बन्द करने जैसे रूप में एक संगठित और दृढ़ प्रतिरोध को जन्म देगा।.....

" सर्वहारा के राजनीतिक प्रभुत्व में, आठ घंटे के दिन को लागू करना बिलकुल भिन्न परिणामों को जन्म देगा । एक ऐसी सरकार जो सर्वहारा पर निर्भर करती है, पूंजी पर नहीं जैसा कि उदारतावाद कहता है, और जो बुर्जुआ जनवाद के 'निष्पक्ष' मध्यस्थ की भूमिका नहीं निभाना चाहती उसके लिए फैक्टरियों को बन्द करना काम के दिन को बढ़ाने का बहाना नहीं बन सकता मजदूरों की सरकार के लिए केवल एक रास्ता बचेगा: बन्द फैक्टरियों का अधिग्रहण और उनमें समाजवादी आधार पर उत्पादन का संगठन।" (वही, **Chapter-VI, Page-3**)

" एक बार सत्ता ग्रहण करने के बाद सर्वहारा बिलकुल अंत तक लड़ेगा। सत्ता को बचाने और सुदृढ़ीकरण के इस संघर्ष में जबकि एक हथियार उद्वेलन और संगठन होगा तो खासतौर पर देहात में दूसरा सामूहिकीकरण की नीति होगी। सामूहिकीकरण न केवल उस स्थिति से आगे का अनिवार्य रास्ता होगा जिसमें सत्ताधारी पार्टी अपने को पायेगी बल्कि सर्वहारा की मदद से यह अपनी इस स्थिति को बचाये रखने का साधन भी होगा।

" जब सतत क्रांति का विचार समाजवादी प्रेस में सूत्रित किया गया–एक ऐसा विचार जो एकतंत्रवाद और सामंतवाद के खात्मे को समाजवादी क्रांति से जोड़ता है...तो हमारे 'प्रगतिशील' प्रेस ने एकमत होकर नाक भौं सिकोड़ी...।" (वही, **Chapter-VI, Page-5)**

" जो भी हो हम समान वितरण का कार्यक्रम लागू करने का जिम्मा नहीं ले सकते क्योंकि एक ओर यह छोटी जोतों के पूर्णत: औपचारिक और लक्ष्यहीन अधिग्रहण की पूर्वकल्पना करता है और दूसरी ओर बड़ी जागीरों को छोटे-छोटे टुकड़ों में बांटने की मांग करता है। आर्थिक दृष्टिकोण से सीधे नुकसानदेह होने के साथ यह नीति केवल प्रतिक्रियावादी उटोपियाई बुरी मंशा ही रख सकती है और सबसे बढ़कर यह क्रांतिकारी पार्टी को राजनीतिक तौर पर कमजोर कर देगी।

" लेकिन रूस की आर्थिक स्थितियों में मजदूर वर्ग की समाजवादी नीति कैसे लागू हो सकती है? हम एक बात निश्चयपूर्वक कह सकते हैं–कि देश की तकनीकी पिछड़ेपन के मुकाबले यह राजनीतिक बाधाओं से काफी पहले टकराने लगेगी। **यूरोपीय सर्वहारा के सीधे राजकीय समर्थन के बिना रूस का मजदूर वर्ग सत्ता में नहीं बना रह सकता और अपने अस्थाई प्रभुत्व को स्थाई समाजवादी अधिनायकत्व में नहीं बदल सकता।** इसमें क्षणभर के लिए भी संदेह नहीं हो सकता। लेकिन दूसरी ओर हमें यह भी संदेह नहीं हो सकता कि पश्चिम में समाजवादी क्रांति मजदूर वर्ग के अस्थाई प्रभुत्व को समाजवादी अधिनायकत्व में बदलने में हमें सीधे सक्षम बना देगी।" (वही, **Chapter-VIII, Page-4,** जोर मूल में)

"...पूरब में क्रांति पश्चिमी सर्वहारा को क्रांतिकारी आदर्शवाद से संक्रमित कर देगी और उनमें अपने शत्रुओं से 'रूसी' में बात करने की भावना पैदा करेगी। यदि रूसी सर्वहारा सत्ता में आता है, भले ही यह हमारी बुर्जुआ क्रांति में परिस्थितियों के अस्थाई संयोग के परिणामस्वरूप ही हो, तो यह वैश्विक प्रतिक्रिया की संगठित शत्रुता से दो-चार होगा और दूसरी ओर वैश्विक सर्वहारा संगठित समर्थन भी देने के लिए इसे तैयार मिलेगा।

" यदि अपने संसाधनों के भरोसे छोड़ दिया जाय तो जैसे ही किसान इससे मुंह मोड़ेंगे, रूस का मजदूर वर्ग अनिवार्यतः प्रतिक्रांति द्वारा कुचल दिया जायेगा। इसके सामने कोई विकल्प नहीं होगा सिवाय इसके कि अपने राजनीतिक शासन के भाग्य को और इस तरह रूसी क्रांति के भाग्य को यूरोप में समाजवादी क्रांति के भाग्य से जोड़े। रूसी बुर्जुआ क्रांति की अस्थाई स्थितियों के संयोग से मिली विशाल राजकीय राजनीतिक सत्ता को यह समूची दुनिया के वर्ग संघर्ष में लगा देगा। अपने हाथों में राजकीय राजनीतिक सत्ता, पीछे प्रतिक्रांति और सामने यूरोपीय प्रतिक्रिया के साथ यह सारी दुनिया में अपने साथियों को यह युद्धघोष भेजेगा जो इस बार अंतिम आक्रमण के लिए आह्वान होगा : **दुनिया के मजदूरो एक हो!**" (वही, Chapter-IX, Page-6)

जैसा कि सर्वविदित है, रूसी क्रांति के चरित्र और संभावनाओं के बारे में बोल्शेविकों और मेन्शेविकों ने भी अपने विचार व्यक्त किये और उसके आधार पर अपनी-अपनी कार्यनीति तय की। बल्कि वे बिलकुल भिन्न कार्यनीतियों पर पहुंचे। मेन्शेविकों ने इस बात से प्रस्थान करते हुये कि रूसी क्रांति का तात्कालिक चरित्र बुर्जुआ जनवादी है, यह अवधारणा प्रस्तुत की कि इस क्रांति का नेतृत्व बुर्जुआ वर्ग करेगा, कि सर्वहारा को इसमें शामिल होने तक अपने को सीमित रखना चाहिये, कि बुर्जुआ वर्ग सत्ता में आयेगा और उसके बाद एक लम्बा समय सर्वहारा को विरोध पक्ष में रहते हुए समाजवादी क्रांति की तैयारी में गुजारना पड़ेगा तथा इसके बाद ही, रूस के पिछड़ेपन के समाप्त हो जाने के बाद ही, उसके समाजवादी समाज के निर्माण के लिए परिपक्व हो जाने के बाद ही सर्वहारा को सत्ता पर कब्जा करना चाहिए तथा समाजवादी समाज के निर्माण का कार्यभार अपने हाथ में लेना चाहिए।

इसके बरक्स लेनिन के नेतृत्व में बोल्शेविकों ने कहा कि हमारी क्रांति के तात्कालिक बुर्जुआ-जनवादी चरित्र से यह तय नहीं होता कि इसका नेतृत्व बुर्जुआ वर्ग करेगा। बल्कि बुर्जुआ वर्ग अत्यन्त निःशक्त (आर्थिक–ऐतिहासिक कारणों से) होने के चलते इस क्रांति का नेतृत्व करने में अक्षम है। वह जारशाही के साथ किसी न किसी समझौते का इच्छुक है और उस पर निर्भर होने का मतलब है क्रांति को तिलांजली। इसके मुकाबले सर्वहारा वर्ग रूस में ऐसा वर्ग है जो न केवल इस क्रांति का नेतृत्व कर सकता है

बल्कि इसके लिए वह किसान समुदाय को अपने साथ ला सकता है। केवल इसी अवस्था में रूस की बुर्जुआ क्रांति मुकम्मल तरीके से पूरी होगी। इसीलिए सर्वहारा वर्ग को चाहिए कि वह किसान समुदाय को अपने पीछे लामबन्द करे। यह बुर्जुआ-जनवादी क्रांति मजदूरों के नेतृत्व में मजदूरों और किसानों के क्रांतिकारी जनवादी अधिनायकत्व की स्थापना से सम्पन्न होगी। इसमें यह अधिनायकत्व न केवल जारशाही और सामंतशाही का नाश करेगा बल्कि वह जमीनों को किसानों में बांट भी सकता है (बाद में लेनिन ने जमीन के राष्ट्रीयकरण और किसानों में उसके बंटवारे की बात कही)।

लेकिन बुर्जुआ-जनवादी क्रांति सम्पन्न करके मजदूर वर्ग वहीं रूकेगा नहीं। बल्कि वह आगे बढ़ता जायेगा तथा क्रांति को सतत जारी रखते हुए समाजवादी कार्यभार अपने हाथ में लेगा। तब मजदूर वर्ग के अधिनायकत्व में समाजवादी निर्माण का कार्य सम्पन्न होगा।

इस तरह लेनिन ने भी सतत क्रांति की बात की लेकिन उन्होंने बुर्जुआ जनवादी और समाजवादी कार्यभारों को अलग-अलग सम्पन्न करने की बात की, दोनों को आपस में मिलाया नहीं। दोनों ही चरणों के लिए उन्होंने अलग-अलग तरह के अधिनायकत्व की बात की। किसानों के मामले में उन्होंने किसानों की अपनी पार्टी के पैदा होने से इंकार नहीं किया और यहां तक कि मिले-जुले अधिनायकत्व के तहत बनने वाली सरकार में मजदूर वर्ग के अल्पमत में होने तक की बात की । और न ही उन्होंने क्रांति के बाद तुरंत ही किसानों के क्रांति के खिलाफ उठ खड़े होने की बात की।

> " सर्वहारा वर्ग को चाहिए कि वह एकतंत्र के प्रतिरोध को बलपूर्वक कुचल देने और बुर्जुआ वर्ग की अस्थिरता को निश्शक्त बना देने के लिए किसान अवाम को साथ मिलाकर जनवादी क्रांति को परिणति तक पहुंचाए। सर्वहारा वर्ग को चाहिए कि वह बुर्जुआ वर्ग के प्रतिरोध को बलपूर्वक कुचल देने के लिए और किसानों तथा टुटपुंजिया वर्ग की अस्थिरता को निश्शक्त बना देने के लिए आबादी के अर्ध-सर्वहारा तत्वों को अपने साथ मिलाकर समाजवादी क्रांति को पूरा करे।" (लेनिन,'सामाजिक जनवाद की दो कार्यनीतियां',1905, दस खंडीय हिंदी संस्करण,प्रगति प्रकाशन मास्को,खण्ड-3,पृष्ठ-122,जोर मूल में) "10. 'क्रांतिकारी कम्यून' और सर्वहारा वर्ग तथा किसानों का क्रांतिकारी जनवादी अधिनायकत्व" (शीर्षक, वही, पृष्ठ-94)

> " किसान आंदोलन में हमेशा प्रतिगामी मिलावटें होंगी और हम उनके खिलाफ लड़ाई का पहले से ऐलान करते हैं। देहाती सर्वहारा और किसान बुर्जुआ लोगों के बीच वर्ग विरोध होना अनिवार्य है। हम उसको पहले ही उद्घाटित करते हैं, उनकी व्याख्या करते हैं और **उसके आधार पर संघर्ष के लिए तैयारी करते हैं।** ऐसे संघर्ष का एक फौरी कारण, बहुत मुमकिन है, यह

सवाल हो कि जब्त की गयी जमीनें किसे दी जायेंगी और कैसे ? हम न तो इस सवाल पर पर्दा डालते हैं और न समान वितरण, "समाजीकरण" इत्यादि का वायदा करते हैं। हम कहते हैं : हम इस संबंध में बाद में लड़ेंगे, फिर लड़ेंगे, नये क्षेत्र में लड़ेगे, नये संघातियों के साथ मिलकर लड़ेंगेः तब हम निस्संदेह देहाती सर्वहारा के साथ, समूचे मजदूर वर्ग के साथ किसान बुर्जुआ लोगों **के खिलाफ** होंगे। व्यवहार में इसका अर्थ उन जगहों पर छोटे किसान मिल्कियों के वर्ग के हाथों में जमीन का अन्तरण भी हो सकता है, जहां गुलामी और भूदासता पर आधारित बड़े ताल्लुकों का अब भी बोलबाला है, जहां अभी तक बड़े पैमाने के समाजवादी उत्पादन के लिए भौतिक परिस्थितियां मौजूद नहीं हैं। जनवादी क्रांति के पूर्णतः विजयी हो जाने की हालत में उसका अर्थ राष्ट्रीयकरण भी हो सकता है और **मजदूर संघों** को बड़े पूंजीवादी ताल्लुकों की सुपुर्दगी भी, क्योंकि जनवादी क्रांति से हम फौरन ही और अपनी शक्तियों के पैमाने के अनुरूप, वर्ग चेतन और संगठित सर्वहारा वर्ग की शक्तियों के पैमाने के अनुरूप समाजवादी क्रांति में संक्रमण करना प्रारम्भ कर देंगे। हम निरंतर क्रांति के पक्षपाती हैं। हम आधे रास्ते में रुकने वाले नहीं हैं। हम अभी और फौरन हर प्रकार के "समाजीकरण" का वायदा नहीं करते, तो इसलिए कि हम उस कार्यभार की वास्तविक शर्तें जानते हैं और किसानों के बीच जो नया वर्ग संघर्ष परिपक्व हो रहा है, उस पर पर्दा नहीं डालते बल्कि उसे उजागर करते हैं।" (लेनिन, 'किसान आंदोलन के प्रति सामाजिक जनवाद का रूप', वही, पृष्ठ-192-193 जोर मूल में)

1917 की दोनों क्रांतियों–फरवरी (बुर्जुआ-जनवादी) और अक्टूबर (समाजवादी)–के बाद लेनिन ने अपनी इस कार्यनीति की सफलता का मूल्यांकन किस रूप में किया? वे लिखते हैं :

" काउत्स्की द्वारा उलझाये गये प्रश्न पर बोल्शेविकों ने 1905 में ही पूरी तरह प्रकाश डाल दिया था। जी हां, हमारी क्रांति बुर्जुआ क्रांति है, **जब तक** हम **समग्र रूप में** किसानों के **साथ-साथ** चलते जाते हैं। यह हमारे लिए उतना स्पष्ट है, जितना हो सकता है, यह हमने 1905 से लेकर हजार बार कहा और हमने न तो कभी ऐतिहासिक प्रक्रिया की इस आवश्यक मंजिल को लांघ जाने की और न आज्ञप्तियों से मिटा देने की कोशिश की है। ..."

" परन्तु 1917 के अप्रेल से, अक्टूबर क्रांति से, हमारे द्वारा सत्ता ग्रहण किये जाने से बहुत पहले हमने खुले आम कहा था तथा जनता को समझाया था: क्रांति इस मंजिल पर अब रुक नहीं सकती, इसलिए कि देश आगे बढ़ा है, पूंजीवाद आगे बढ़ा है, तबाही ने अभूतपूर्व आकार ग्रहण किया है, **जो तकाजा करेगी** (कोई यह चाहे या न चाहे), आगे की ओर, **समाजवाद की**

ओर पग बढ़ाने का तकाजा करेगी। इसलिए कि आगे बढ़ने का, युद्ध से थके देश को बचाने का, मेहनतकशों और शोषितों के दुख-कष्टों को **कम करने** का कोई और रास्ता **नहीं हो सकता।**

" ठीक वही हुआ, जो हमने कहा था। क्रांति के पूरे विकासक्रम ने हमारे तर्क के सही होने की पुष्टि कर दी। **शुरू में** ''पूरे'' किसान समुदाय के साथ राजतंत्र के विरुद्ध, जमींदारों के विरुद्ध, मध्ययुगीनता के विरुद्ध (और उस हद तक क्रांति बुर्जुआ, बुर्जुआ-जनवादी क्रांति बनी रहती है)। **फिर** गरीब किसानों के साथ, अर्ध-सर्वहाराओं के साथ, सारे शोषितों के साथ देहात के अमीरों, कुलकों, मुनाफाखोरों समेत **पूंजीवाद के विरुद्ध** और उस हद तक क्रांति **समाजवादी** बन जाती है। पहली और दूसरी क्रांतियों के बीच कोई कृत्रिम, चीनी दीवाल खड़ी करने, सर्वहारा वर्ग की तैयारी की मात्रा और गरीब किसानों के साथ उसकी एकता की मात्रा **के अलावा** किसी और चीज से उन्हें एक दूसरे -दूसरे से अलग करने का प्रयत्न करना मार्क्सवाद का भयानक विकृतीकरण करना, उसे बाजारू बनाना, उसके स्थान पर उदारतावाद को प्रतिष्ठित करना है।"(लेनिन, 'सर्वहारा क्रांति और गद्दार काउत्स्की', 1918,वही, खण्ड-8, पृष्ठ-166-167 जोर मूल में)

अंतिम पैराग्राफ में "शुरू में" और "फिर" शब्दों पर जोर महत्वपूर्ण है। यह लेनिन और ट्राट्स्की की "सतत क्रांति" की अवधारणाओं के फर्क को साफ चिह्नित करता है। ट्राट्स्की के यहां दोनों कार्यभार "शुरू में" और "फिर" नहीं हैं बल्कि आपस में मिले हुए हैं बल्कि दूसरे के बिना पहला सम्भव नहीं है। लेनिन की इस अवधारणा में इसी कारण सम्भव था कि दोनों कार्यभारों की पूर्ति में समयान्तराल पिछड़े देशों में और ज्यादा बढ़ जाय जैसा कि चीन में वास्तव में हुआ जबकि ट्राट्स्की की अवधारणा में यह सम्भव नहीं था।

रूसी क्रांति में सर्वहारा वर्ग की कार्यनीति के मसले पर उपरोक्त उद्धरण यह दिखाते हैं कि लेनिन और ट्राट्स्की की कार्यनीतियों में बहुत ज्यादा फर्क था। और दोनों इस फर्क से वाकिफ थे तथा दोनों एक दूसरे के खिलाफ संघर्ष चला रहे थे। लेनिन न केवल मेन्शेविक कार्यनीति के खिलाफ संघर्ष चला रहे थे, बल्कि ट्राट्स्की की कार्यनीति के खिलाफ भी। इसी तरह ट्राट्स्की भी मेन्शेविकों व बोल्शेविकों दोनों के खिलाफ संघर्ष चला रहा था।

लेनिन ने ट्राट्स्की पर यह आरोप लगाया कि उसने अपनी थीसिस का निर्माण करने में मेंशेविकों और बोल्शेविकों से एक-एक चीज उधार ली है। मेन्शेविकों से उसने उधार लिया है रूस की क्रांति में किसान वर्ग की भूमिका को कम करके आंकना और बोल्शेविकों से उसने उधार लिया है क्रांति में मजदूर वर्ग की नेतृत्वकारी भूमिका। इस तरह लेनिन का ट्राट्स्की पर स्पष्ट आरोप था कि वह रूसी क्रांति में मजदूर वर्ग की नेतृत्वकारी भूमिका को स्वीकार करते हुए किसानों की भूमिका को बहुत कम करके आंकता है। लेनिन के इस

आरोप का यह भी मतलब निकलता है कि इसी कारण वह रूसी क्रांति की मुक्ति यूरोपीय क्रांति में देखता था क्योंकि उसे मजदूर वर्ग के किसानों के साथ संघबद्धता पर (लेनिन के सूत्रों की सीमा में) भरोसा नहीं था।

दूसरी ओर लेनिन का यह भी आरोप था कि "जार नहीं किन्तु मजदूरों की सरकार" का नारा देकर ट्राट्स्की बुर्जुआ-जनवादी क्रांति को लांघना चाहता था। हालांकि क्रांति के बाद ट्राट्स्की ने दावा किया कि उसने यह नारा कभी नहीं दिया था, कि यह नारा 1905 में पारवुस ने दिया था जो पता नहीं कैसे उसके नाम से चिपक गया किन्तु अप्रैल 1917 तक भी लेनिन द्वारा ट्राट्स्की के नाम से इस नारे का उल्लेख यह दिखाता है कि यह नारा ट्राट्स्की के विचारों को प्रतिध्वनित करता था। जो भी हो, मजदूरों-किसानों के क्रांतिकारी जनवादी अधिनायकत्व के बरक्स सर्वहारा के अधिनायकत्व का नारा देना तथा पार्टी के न्यूनतम और महत्तम कार्यक्रम के आपस में मिल जाने की बात का सारतः वही अर्थ था। और लेनिन के लिए इसका अर्थ था बुर्जुआ-जनवादी क्रांति को लांघना। और जैसा कि लेनिन ने मेन्शेविकों के बारे में कहा था, रूसी क्रांति में किसानों की भूमिका को कम करके आंकने का मतलब था किसानों को क्रांति के लिए लामबंद करने से इंकार। इस तरह अपने "वामपंथी" तेवरों के बावजूद, बोल्शेविकों से ज्यादा 'वामपंथी' लफ्फाजी के बावजूद, ट्राट्स्की उसी जमीन पर जाकर खड़ा हो जाता है जिस पर मेन्शेविक थे - रूस की आसन्न बुर्जुआ- जनवादी क्रांति में (और इसीलिए इसकी निरंतरता में होने वाली समाजवादी क्रांति में) मजदूर वर्ग की नेतृत्वकारी भूमिका से इंकार, क्रांति का त्याग, अवसरवाद। और अक्सर लेनिन ने इसे इसी रूप में कहा भी । लेनिन की निगाह में क्रांति में कार्यनीति के सवाल पर ट्राट्स्की दोनों धड़ों से ऊपर होने का दिखावा करते हुए भी सारतः मेन्शेविकों के साथ था। ट्राट्स्की के 'सतत क्रांति' के सिद्धान्त के बारे में लेनिन ने बाद में भी अपना निर्णय नहीं बदला। 1914 में ट्राट्स्की के अपने मूल्यांकन में उन्होंने इसे 'उपहासास्पद वामपंथी सिद्धान्त' कहा। 1915 में उन्होंने लिखा:

> " ट्राट्स्की 1905 के अपने 'मौलिक' सिद्धान्त को दोहराते हैं और रुक कर सोचने से इंकार करते हैं कि पूरे दस साल तक जीवन ने इस खूबसूरत सिद्धान्त को क्यों दरकिनार कर रखा है।"
>
> "ट्राट्स्की वास्तव में रूस में उदार मजदूर नेताओं की सहायता करते हैं क्योंकि किसानों की भूमिका से इंकार का मतलब वे किसान को जगाने से इंकार लगाते हैं।"(लेनिन, **Two line of the Revolution', 1915,** अनुवाद हमारा)

ट्राट्स्की ने भी अपने हिसाब से लेनिन का, बोल्शेविकों का विरोध किया। उसके हिसाब से मेंशेविक और बोल्शेविक दोनों क्रांति के तात्कालिक स्वरूप के बुर्जुआ-जनवादी होने पर जोर दे रहे थे। जहां मेन्शेविकों का अवसरवाद प्रत्यक्ष था वहीं बोल्शेविकों का भी स्वनिर्धारित सीमा में कैद हो जाना स्वाभाविक था जो क्रांति हो जाने की स्थिति में उनके पतन में अभिव्यक्त होगा। क्रांति के बुर्जुआ-जनवादी स्वरूप पर जोर देने के कारण, अभी उसे ही तात्कालिक मंजिल मानने के कारण बोल्शेविक क्रांति हो जाने पर उसकी सीमाओं में कैद होकर रह जायेंगे तथा पतित होकर उसी नियति को प्राप्त होंगे जिसको मेंशेविक। यही नहीं 1922 में ट्राट्स्की ने दावा किया कि उसका आकलन सही था और केवल लेनिन ही (अपना पुराना नारा और नीति छोड़कर) इससे बोल्शेविक पार्टी को बचा सके।

उसने लिखा :

> " हमारी क्रांति बुर्जुआ क्रांति है' की अमूर्तता से प्रस्थान करते हुए यदि मेंशेविक सर्वहारा की सारी कार्यनीति को उदारतावादी बुर्जुआ वर्ग के व्यवहार के हिसाब से ढालने के विचार तक पहुंचते हैं, यहां तक कि उसके द्वारा सत्ता पर कब्जे तक तो बोल्शेविक भी उतने ही निपट अमूर्त 'समाजवादी अधिनायकत्व नहीं बल्कि जनवादी अधिनायकत्व' से प्रस्थान कर सर्वहारा के बुर्जुआ-जनवादी स्वनिर्मित सीमा तक पहुंचेंगे, उस सर्वहारा के जिसके हाथ में सत्ता आयेगी। सच कहें तो इस सवाल पर दोनों के बीच फर्क काफी ज्यादा है : जब कि मेंशेविज्म के क्रांति विरोधी पहलू अभी ही पूरी ताकत के साथ अभिव्यक्त हो रहे हैं, बोल्शेविज्म के क्रांति विरोधी गुण केवल क्रांतिकारी विजय की स्थिति में ही भारी खतरा पैदा करेंगे।
>
> " यह 1909 में रोजा लक्जमवर्ग की पोलिश पत्रिका में लिखा गया। इसमें 1922 में यह जोड़ा गया :
>
> " जैसा कि सभी जानते हैं ऐसा नहीं हुआ क्योंकि लेनिन के नेतृत्व में बोल्शेविज्म ने इस महत्वपूर्ण सवाल पर 1917 के बसंत में, यानी सत्ता पर कब्जा से पहले, अपने को बौद्धिक तौर पर पुनः सस्त्रसज्जित किया (आंतरिक संघर्ष के बिना नहीं)।" (Trotsky, 'History of Russian Revolution',Victor Gollancz Ltd, London, 1932,Vol-I, Appendix-II, Page-481-482, अनुवाद हमारा)

जैसा कि पहले कहा जा चुका है ट्राट्स्की ने लेनिन के मजदूरों-किसानों के क्रांतिकारी जनवादी अधिनायकत्व का विरोध किया और उसके बदले अपनी 'सर्वहारा अधिनायकत्व' की लाइन पेश की। लेनिन ने फरवरी क्रांति के बाद अप्रैल 1917 में घोषित किया कि मजदूरों-सैनिकों की सोवियतों के रूप में 'मजदूरों-

किसानों का क्रांतिकारी जनवादी अधिनायकत्व' मूर्तमान हो गया है और वक्त आ गया है कि हम उससे आगे बढ़ें। उसके बाद भी वे अक्सर इस रूप में इस नारे के चरितार्थ हो जाने की बात करते रहे।

अप्रैल 1917 में उन्होंने कहा था :

> " केवल यहीं आकर, घटना स्थल पर ही हमने जाना कि मजदूरों और सैनिकों के प्रतिनिधियों की सोवियतों ने अपनी सत्ता अस्थाई सरकार को सोंप दी है। मजदूरों और सैनिकों के प्रतिनिधियों की सोवियत सर्वहारा और सैनिकों की तानाशाही की स्थापना है; बाद वाले में ज्यादातर किसान हैं। यह सर्वहारा और किसान वर्ग का अधिनायकत्व है। लेकिन इस 'अधिनायकत्व' ने बुर्जुआ वर्ग के साथ समझौता कर लिया है। और यहीं पर 'पुराने' बोल्शेविज्म का संशोधन दरकार है।" (लेनिन, 1917,स्टालिन के संग्रह 'Problems of Leninism' में उद्धृत,Foreign Language Press, Peking, page-256,अनुवाद हमारा)

लेकिन ट्राट्स्की इससे सहमत नहीं था। उसका कहना था कि रूसी क्रांति में कभी यह अधिनायकत्व कायम नहीं हो पाया। बल्कि उसकी अवधारणा के हिसाब से सीधे अक्टूबर 1917 में सर्वहारा की तानाशाही कायम हुयी जिसने दोनों क्रांतियों के कार्यभारों को एक साथ अंजाम दिया। इसे साबित करने के लिए उसने 1928 में लिखित अपनी पुस्तक "सतत क्रांति" में बाकायदा एक अध्याय ही लिखा : "क्या हमारे देश में जनवादी अधिनायकत्व कायम हुआ? यदि हां तो , कब?" इसमें उसने कहा कि लेनिन का मजदूरों -किसानों का क्रांतिकारी जनवादी अधिनायकत्व का नारा एक बीजगणितीय नारा था जिसके स्थितियों के हिसाब से कई अर्थ निकल सकते थे। रूसी क्रांति का विकास जिस रूप में हुआ उसमें यह नारा कभी मूर्तमान नहीं हो पाया और अक्टूबर 1917 में सीधे सर्वहारा का अधिनायकत्व कायम हुआ। इस तरह इतिहास ने लेनिन के नारे को ठुकरा दिया और यह नारा किनारे लगा दिया गया। लेनिन द्वारा खुद इस नारे के फरवरी की क्रांति में चरितार्थ हो जाने की बात को उसने गोलमोल करके टाल दिया ।

जैसा कि सर्वविदित है, 1903 से 1917 के बीच कई बार मेन्शेविकों के साथ रहने और कई बार मेन्शेविकों-बोल्शेविकों दोनों से अलग और ऊपर रहने का दिखावा करने के बाद ट्राट्स्की 1917 के मध्य में बोल्शेविक पार्टी में शामिल हो गया। बोल्शेविक पार्टी में शामिल होते समय उसने पार्टी की लाइन को पूरी तरह स्वीकार करने का दिखावा किया।

लेकिन 1924 में जब एक देश में समाजवाद के निर्माण का सवाल उठ खड़ा हुआ तब उसी बहस के दौरान ट्राट्स्की का सतत क्रांति का सिद्धान्त भी जेरे बहस आ गया । तब पता चला कि ट्राट्स्की ने अपने

सतत क्रांति के सिद्धान्त को कभी भी नहीं छोड़ा था और उसी पर कायम रहते हुए वह सोवियत संघ में समाजवाद के निर्माण की संभावना से (बिना वैश्विक क्रांति हुए) इंकार करने लगा।

तब तक ट्राट्स्की भी अपने को बोल्शेविक–लेनिनवादी कहने लगा था। अब, सतत क्रांति के मामले पर लेनिन और ट्राट्स्की का विरोध सबको याद था। ऐसे में ट्राट्स्की ने एक चालाकी भरा रास्ता अख्तियार किया। उसने कहना शुरू किया कि रूसी क्रांति के चरित्र और संभावनाओं के बारे में उसकी और लेनिन की लाइन में कोई विरोध नहीं था। दोनों भिन्न-भिन्न तरीके से एक ही बात कह रहे थे । उसके अपने सतत क्रांति के सिद्धान्त में कुछ खामियां थीं। लेकिन यह सब कहने के बाद वह जो कहता था उसका मतलब यही निकलता था कि उसकी लाइन सही थी और लेनिन की लाइन गलत। यह हद दर्जे की चालाकी और धूर्तता थी। लेनिन को औपचारिक तौर पर सही मान लेने के बाद वह वास्तव में हर मुद्दे पर उनका खन्डन करने लगता था। 1928 में लिखित उसकी 'सतत क्रांति' नामक किताब का उपरोक्त अध्याय ही नहीं पूरी किताब ही इस बात का नमूना है कि सिद्धान्तों के क्षेत्र में कैसे चालाकी और धूर्तता की जा सकती है, लेनिन को ऊपरी तौर पर सही कहते हुए कैसे उनको गलत और अपने को सही साबित किया जा सकता है। उपरोक्त सारे उद्धरणों से साफ है कि रूसी क्रांति में लाइन के सवाल पर लेनिन और ट्राट्स्की दोनों एक साथ सही नहीं हो सकते थे। निष्कर्ष स्पष्ट है-लेनिन सही थे, ट्राट्स्की गलत। जैसा हम आगे देखेंगे सिद्धान्तों के क्षेत्र में ट्राट्स्की की यह चालाकी और धूर्तता उसके लिए काफी घातक साबित हुयी। यदि वह वास्तव में अपने को गलत मान लेता या फिर वह सीधे-सीधे अपने को सही और लेनिन को गलत घोषित कर देता तो सैद्धान्तिक तौर पर वह ज्यादा सुसंगत हो जाता, ईमानदार तो खैर हो ही जाता। यह सुसंगतता उसे अनवरत झूठ और फरेब से बचा लेती भले ही वह बोल्शेविक पार्टी से बाहर हो जाता जो वह 1927 में हो ही गया। लेकिन ट्राट्स्की के राजनीतिक चरित्र में ही यह नहीं था।

II

एक देश में समाजवाद

अंतर्राष्ट्रीयतावाद मार्क्स-एंगेल्स के जमाने से ही कम्युनिस्टों का बुनियादी उसूल रहा है। वे अपने समूचे क्रांतिकारी संघर्ष को उसी फ्रेमवर्क में देखते रहे हैं। मजदूरों का अपना कोई देश नहीं होता यह

उनका प्रस्थान बिन्दु रहा है। लेकिन इसके साथ यह भी है कि उनके संघर्ष की प्राथमिक रणभूमि उनका देश रहा है, वे प्रथमतः अपने-अपने देशों के शासक वर्गों से हिसाब चुकता करते रहे हैं।

कम्युनिस्ट घोषणा पत्र लिखे जाने के समय से ही मार्क्सवादियों-कम्युनिस्टों के लिए यह मानी हुयी बात थी कि उनके संघर्ष का प्राथमिक क्षेत्र भले उनका देश हो लेकिन जो क्रांति होगी वह वैश्विक क्रांति होगी, कमोबेश सारे विकसित देशों में एक साथ होगी तथा उनमें एक साथ तथा मिलकर ही समाजवाद का निर्माण होगा। क्रांति की शुरूआत भले ही किसी देश में हो, अंततः यह सभी में फैल जायेगी और इस प्रकार क्रांति वैश्विक क्रांति में तब्दील हो जायेगी। प्रथम और द्वितीय इंटरनेशनल के जमाने में सारे ही कम्युनिस्ट यह बात मानते थे।

लेकिन साम्राज्यवाद के उदय के बाद, खासकर प्रथम विश्वयुद्ध के दौर में लेनिन ने भिन्न तौर पर सोचना शुरू किया। अंततः 1915 में वे इस नतीजे पर पहुंचे कि एक अकेले देश में भी समाजवाद का निर्माण संभव है और एक अकेले देश में समाजवाद का निर्माण न तो अंतर्राष्ट्रीयतावाद का त्याग है और न ही राष्ट्रीय संकीर्णमना, राष्ट्रीय समाजवाद की तो बात ही क्या। यह साम्राज्यवाद की स्थितियों में समाज विकास के विशिष्ट स्वरूप ग्रहण कर लेने के कारण हुआ है। उन्होंने लिखा :

> " विश्व का (मात्र यूरोप का नहीं) संयुक्त राज्य राष्ट्रों के एकीकरण तथा स्वतंत्रता के उस राजकीय रूप का द्योतक है, जिसे हम समाजवाद के साथ जोड़ते हैं-उस समय तक, जब तक कम्युनिज्म की पूर्ण विजय जनवादी राज्य समेत हर तरह के राज्य का अंतिम रूप में विलोप सम्पन्न नहीं कर देती। परन्तु स्वतंत्र नारे के रूप में विश्व के संयुक्त राज्य का नारा शायद ही सही हो, पहले, इसलिए कि वह समाजवाद के साथ मिल जाता है, दूसरे, इसलिए कि उसके फलस्वरूप एक अकेले देश में समाजवाद की विजय के असंभव होने की तथा ऐसे देश के अन्य देशों के साथ सम्बन्धों की प्रस्थापना की गलत व्याख्या की जा सकती है।
>
> "असमतल आर्थिक तथा राजनीतिक विकास पूंजीवाद का असंदिग्ध नियम है। इसलिए यह निष्कर्ष निकलता है कि समाजवाद की विजय पहले कुछ पूंजीवादी देशों में अथवा एक अकेले पूंजीवादी देश तक में संभव है। इस देश का विजयी सर्वहारा वर्ग पूंजीपतियों का सम्पत्तिहरण करके तथा स्वयं अपने समाजवादी उत्पादन को संगठित करके अन्य देशों के उत्पीड़ित वर्गों को अपने ध्येय की ओर आकृष्ट करते हुए, उन देशों में पूंजीपतियों के विरूद्ध विद्रोह की आग प्रज्ज्वलित करते हुए, जरूरत पड़ने पर शोषक वर्गों तथा उनके राज्यों के विरूद्ध सशस्त्र सेनाओं के साथ तक मैदान में उतरते हुए शेष, पूंजीवादी विश्व **के विरूद्ध** उठ खड़ा होगा। उस समाज का, जिसमें सर्वहारा वर्ग

बुर्जुआ वर्ग का तख्ता पलटकर विजयी हो जाता है, राजनीतिक रूप जनवादी जनतंत्र होगा, जो सम्बद्ध राष्ट्र अथवा सम्बद्ध राष्ट्रों के सर्वहारा वर्ग की शक्तियों को अभी तक समाजवाद का मार्ग न अपनाने वाले राज्यों के विरूद्ध संघर्ष में अधिकाधिक संकेन्द्रित करेगा। उत्पीड़ित वर्ग के, सर्वहारा वर्ग के अधिनायकत्व के बिना वर्गों का उन्मूलन असंभव है। समाजवाद में राष्ट्रों का स्वतंत्र संघ पिछड़े हुए राज्यों के विरूद्ध समाजवादी जनतंत्रों के न्यूनाधिक लंबे, जबरदस्त संघर्ष के बिना असंभव है।

" इन्हीं कारणों से, रूसी सामाजिक-जनवादी मजदूर पार्टी की विदेशों में स्थित शाखाओं के सम्मेलन में तथा सम्मेलन के उपरांत बार-बार बहस के फलस्वरूप केन्द्रीय मुखपत्र का सम्पादक मंडल इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि संयुक्त राज्य यूरोप का नारा गलत है।"(लेनिन, 'संयुक्त राज्य यूरोप का नारा', 1915, वही, खण्ड-6, पृष्ठ -24 - 25, जोर मूल में)

उपरोक्त उद्धरण में लेनिन ने एक अकेले देश में समाजवाद की स्थापना की संभावना को साफ-साफ रेखांकित किया। इसी बात को लेनिन ने अगले साल एक बार फिर लिखा, इस बार दूसरे कोण से यानी कि सभी देशों में एक साथ समाजवाद की विजय संभव नहीं हो सकती :

" पूंजीवाद का विकास विभिन्न देशों में बहुत ही विषम गति से होता है। माल-उत्पादन की अवस्था में, इसके अलावा दूसरी चीज नहीं हो सकती। इससे यह अकाट्य नतीजा निकलता है कि सभी देशों में समाजवाद की एक साथ विजय नहीं हो सकती। उसकी विजय पहले एक या कई देशों में होगी, जबकि दूसरे देश कुछ समय के लिए पूंजीवाद या इससे पहले की अवस्था में रहेंगे। इससे टक्कर ही न पैदा होगी बल्कि दूसरे देशों के पूंजीपति सीधे-सीधे कोशिश करेंगे कि समाजवादी राज्य के विजयी मजदूरों को कुचल दें। ऐसी हालत में हमारी तरफ से युद्ध वैध और न्यायपूर्ण होगा। यह युद्ध समाजवाद के लिए होगा, दूसरी राष्ट्रीयताओं को पूंजीपतियों से मुक्त करने के लिए होगा।'' (लेनिन, 'सर्वहारा क्रांति का युद्ध कार्यक्रम', 1916, सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी [बोल्शेविक] का इतिहास, राहुल फाउन्डेशन, पृष्ठ-173)

निश्चित तौर पर न केवल अंतर्राष्ट्रीयतावादी होने के चलते बल्कि वैश्विक पूंजीवाद की वस्तुस्थिति का, उत्पादन और वितरण के वैश्विक पैमाने पर अन्तर्गुंफन का उत्पादक शक्तियों के वैश्विक पैमाने पर कार्यरत होने का, भली-भांति ज्ञान होने के कारण लेनिन और बोल्शेविकों के लिए तब भी स्पष्ट था कि किसी देश में, वह भी पिछड़े पूंजीवादी देश में, सबसे अनुकूल स्थिति सभी पूंजीवादी देशों में या कई सारे देशों में एक साथ समाजवाद के निर्माण की होगी। तभी समाजवाद सबसे अच्छी तरह, सबसे स्वस्थ रूप में

और सबसे जल्दी निर्मित हो सकता हैं। लेकिन उन्होंने इसके साथ यह भी सवाल उठाया कि यदि ऐसा न हो तो, यदि अकेले एक देश में क्रांति हो तो क्या किया जाय? क्या तब भी उस देश में समाजवाद का निर्माण संभव है? और उन्होंने जवाब दिया : हां, यह संभव है। यह कठिन दुरूह और लंबा तथा कुछ अस्वस्थ होगा, लेकिन यह संभव है। यही नहीं, वैश्विक पूंजीवाद मोटा-मोटी इसी दिशा में देशों को धकेल रहा है जहां भीषण अंतरसाम्राज्यवादी प्रतियोगिता के चलते सबसे कमजोर कड़ी टूट जायेगी। यह कमजोर कड़ी सबसे विकसित पूंजीवादी देश नहीं बल्कि वह देश होगा जहां साम्राज्यवाद के सारे अंतर्विरोध सबसे तीखे होंगे।

लेकिन ट्राट्स्की लेनिन तथा बोल्शेविकों से सहमत नहीं था। 1915 में बोल्शेविकों के मुखपत्र 'सामाजिक जनवादी' में उपरोक्त लेख के प्रकाशित होने के बाद उसने विरोध में एक लेख लिखा। उसने लिखा:

> " संयुक्त राज्य यूरोप के नारे के खिलाफ जो एकमात्र कमोबेश ठोस ऐतिहासिक तर्क पेश किया गया है वह स्विटजरलैंड के **सामाजिक जनवादी** में इस वाक्य में सूत्रबद्ध किया गया:'असमान आर्थिक और राजनैतिक विकास पूंजीवाद का निरपेक्ष नियम है।' इससे **सामाजिक जनवादी** यह निष्कर्ष निकालता है कि समाजवाद की एक देश में विजय संभव है, और इसीलिए प्रत्येक अलग देश में सर्वहारा अधिनायकत्व को संयुक्त राज्य यूरोप की स्थापना पर निर्भर (contigent) नहीं किया जाना चाहिए। विभिन्न देशों में पूंजीवादी विकास असमान होता है, यह बिलकुल विवादहीन तर्क है। लेकिन यह असमानता खुद अतीव असमान है। ब्रिटेन, आस्ट्रिया, जर्मनी या फ्रांस का पूंजीवादी विकास एक जैसा नहीं है। लेकिन अफ्रीका और एशिया की तुलना में ये सभी देश पूंजीवादी 'यूरोप' का प्रतिनिधित्व करते हैं जो सामाजिक क्रांति के लिए परिपक्व हो चुका है। यह कि प्रत्येक देश को अपने संघर्ष में दूसरों का 'इंतजार' नहीं करना चाहिये यह एक प्राथमिक विचार है जिसे दोहराया जाना फायदेमंद और आवश्यक है जिससे कि एकसाथ अंतर्राष्ट्रीय कार्यवाही का विचार कहीं अंतर्राष्ट्रीय निष्क्रियता से स्थानापन्न न हो जाय। बिना दूसरों का इंतजार किये, हम राष्ट्रीय स्तर पर संघर्ष शुरू करते हैं और जारी रखते हैं इस पूर्ण आश्वस्ति के साथ कि हमारी पहलकदमी दूसरे देशों में संघर्ष को आवेग प्रदान करेगी; लेकिन यदि ऐसा नहीं होता तो यह सोचना नाउम्मीदी होगी–जैसा कि ऐतिहासिक अनुभव और सैद्धान्तिक विवेचना गवाही देते हैं–कि, उदाहरणस्वरूप, रूढ़िवादी यूरोप के सामने क्रांतिकारी रूस टिक पायेगा या कि पूंजीवादी दुनिया में समाजवादी जर्मनी अलग-थलग पड़ा अस्तित्वमान रह पायेगा। राष्ट्रीय सीमाओं के भीतर सामाजिक क्रांति का परिप्रेक्ष्य स्वीकार करना उसी राष्ट्रीय संकीर्ण मानसिकता का शिकार होना है, जो कि

सामाजिक देशभक्तिवाद का सारतत्व है। " (ट्राट्स्की, स्टालिन के संग्रह 'On the Opposition' में उद्धृत, Foreign Language press, Peking, page-402 व 541,अनुवाद हमारा, जोर मूल में)

स्पष्टतः ही यह लेख लेनिन और बोल्शेविक पार्टी की प्रस्थापनाओं का खण्डन करने के लिए लिखा गया था और ट्राट्स्की भली-भांति जानता था कि वह किस चीज का खण्डन कर रहा है। उसने बोल्शेविकों की प्रस्थापनाओं का वही अर्थ लगाया जो उनका अर्थ था और उसने उनका विरोध किया। स्पष्ट था कि ट्राट्स्की एक देश में समाजवाद के निर्माण की प्रस्थापना का विरोध कर रहा था।

1924 में जब सोवियत संघ में समाजवाद के निर्माण करने पर बहस उठी और स्टालिन ने अपने पक्ष में लेनिन के उपरोक्त लेख (1915) का उद्धरण दिया तथा साथ में यह भी बताया कि ट्राट्स्की ने तभी उसका विरोध किया था तब ट्राट्स्की के साामने दांयें-बांयें करने के अलावा कोई रास्ता नहीं रहा। उसने दांयें-बांयें करने के लिए दो तर्क गढ़े। पहला तो यह कि लेनिन ने एक देश में समाजवाद के निर्माण की बात एक छोटे लेख में चलते-चलते यूं ही कर दी थी ('रूसी क्रांति का इतिहास' के खंड-3 का परिशिष्ट), दूसरा यह कि जब लेनिन 'समाजवादी उत्पादन संगठित कर लेने' की बात कर रहे थे तो उनका आशय समाजवादी समाज की स्थापना से नहीं था बल्कि सर्वहारा राज्य के हाथों आ चुकी फैक्टरियों-मिलों में उत्पादन के चालू कर देने से था जिससे शहर व देहात के बीच विनिमय चालू हो सके ('लेनिन के बाद तीसरा इंटरनेशनल')। दोनों ही बातें वही सैद्धान्तिक चालाकी और धूर्तता हैं जिसका हम पहले ही जिक्र कर चुके हैं।

पहली बात यह कि एक देश में समाजवाद की बात लेनिन ने यूं ही एक लेख में चलते-चलते नहीं कर दी थी। प्रथम विश्व युद्ध जब चरम पर था तब भविष्य में युद्ध से निजात पाने के एक तरीके के तौर पर संयुक्त राज्य यूरोप का नारा गूंज रहा था यानी सभी देशों को मिला कर संयुक्त राज्य यूरोप गठित किया जाना चाहिए। ट्राट्स्की संयुक्त राज्य यूरोप के नारे का पक्षधर था। बोल्शेविक पार्टी ने भी उपरोक्त नारे के बारे में विचार-विमर्श किया। जैसा कि उपरोक्त उद्धरण से स्पष्ट है बोल्शेविक पार्टी ने इस पर सम्मेलन में और पत्र-पत्रिकाओं में लम्बी बहस की। बहस के नतीजे के तौर पर बोल्शेविक पार्टी उपरोक्त नतीजे पर पहुंची जिसे लेनिन ने पार्टी मुखपत्र 'सामाजिक जनवादी' के सम्पादक मण्डल की ओर से मुखपत्र में प्रकाशित किया। यानी यह लेनिन का अपना कोई छोटा-मोटा लेख नहीं बल्कि एक महत्वपूर्ण मसले पर (जिस पर ट्राट्स्की भी निश्चित राय रखता था) बोल्शेविकों की गहन मंत्रणा के बाद निकाला गया निष्कर्ष था। और एक देश में समाजवाद का निर्माण इस निष्कर्ष का हिस्सा था बल्कि संयुक्त राज्य यूरोप के नारे को अस्वीकार करने का

एक कारण यह था कि यह एक देश में समाजवाद की स्थापना की संभावना को खारिज करता था। यह सारा प्रकरण ट्राट्स्की की बौद्धिक बेईमानी की मिसाल है।

इसकी अगली मिसाल है लेनिन के आशय को ही बदल देना यानी बोल्शेविक पार्टी के तब के निष्कर्षों का कुछ का कुछ अर्थ निकालना। लेकिन इस बौद्धिक बेईमानी का तो ट्राट्स्की का अपना उद्धरण ही खारिज करता है। बोल्शेविक पार्टी के निष्कर्षों पर ट्राट्स्की का उपरोक्त उद्धरण पढ़िये। उसमें उसने अंत में साफ-साफ आरोप लगाया है कि एक देश में समाजवाद की बात करना राष्ट्रीय संकीर्ण मानसिकता है जो कि वास्तव में सामाजिक देशभक्तिवाद ही है यानी कथनी में समाजवादी और करनी में देशभक्त। अब ट्राट्स्की बोल्शेविकों पर इस बात के लिए तो राष्ट्रीय संकीर्णमना का आरोप लगायेगा नहीं कि वे क्रांति के बाद राज्य के हाथों में ले ली गई फैक्टरियों में उत्पादन शुरू कर देंगे। यह तो खुद ट्राट्स्की भी करेगा या कोई अन्य भी। तब राष्ट्रीय संकीर्णमना का आरोप किसलिए लगेगा? निश्चय ही इस बात के लिए कि बोल्शेविक एक अकेले देश में समाजवाद के निर्माण की बात कर रहे थे जैसा कि 1924 के बाद ट्राट्स्की और ट्राट्स्कीपंथियों ने स्टालिन और समूची बोल्शेविक पार्टी पर लगाया। कोई भी सवाल पूछ सकता है कि कौन सा ट्राट्स्की सही बोल रहा है-1915 वाला या 1924 के बाद वाला? दोनों में से एक तो झूठा है। उद्धरणों से स्पष्ट है कि 1915 वाले ट्राट्स्की ने बोल्शेविकों की बातों का सही अर्थ लगाया था यानी यह कि बोल्शेविक 1915 में ही कह रहे थे कि एक अकेले देश में समाजवाद का निर्माण संभव है।

लेकिन 1915 में एक अकेले देश में समाजवाद के निर्माण की बात करते हुए तब भी बोल्शेविकों के लिए बात साफ थी कि समाजवाद के निर्माण के लिए सबसे अच्छी, सबसे अनुकूल स्थिति वही होगी जिसमें सारे पूंजीवादी देशों में एक साथ समाजवाद का निर्माण हो। इच्छित स्थिति यही थी। और प्रथम विश्व युद्ध के दौरान खासकर 1917 में ऐसा लग भी रहा था कि विश्व युद्ध की विभीषिका के चलते वैश्विक क्रांति फूट पड़ने वाली है। जब बोल्शेविकों ने सत्ता पर कब्जा किया तो सब लोग यही उम्मीद कर रहे थे कि यह वैश्विक क्रांति की शुरूआत है, कि वैश्विक क्रांति बहुत जल्दी फूट पड़ेगी। लेकिन हफ्तों-महीनों के इंतजार सालों में बदलते गये और इस बीच जितनी क्रांतियां हुई वे सारी अंततः असफल हो गयी। 1923-24 आते-आते स्पष्ट हो गया कि वैश्विक क्रांति का ज्वार अब उतार पर है, कि अगला ज्वार आने में कुछ वक्त लगेगा।

निश्चित तौर पर वैश्विक क्रांति की उक्त असफलता का मुख्य जिम्मा दूसरे इंटरनेशनल के गद्दार नेताओं पर है। उनकी गद्दारी के चलते ही ये क्रांतियां असफल हो गयी और रूसी क्रांति अकेली रह गई। कहने की जरूरत नहीं कि दूसरे इंटरनेशनल के नेताओं की गद्दारी की भी भौतिक जमीन थी। लेकिन जैसे-जैसे

वैश्विक क्रांति टलती गई वैसे-वैसे बोल्शेविकों के सामने यक्ष प्रश्न खड़ा होता गया कि प्रथम विश्व युद्ध और गृह युद्ध से जर्जर देश में अपने सर्वहारा के राज्य का क्या करें ? क्या हाथ पर हाथ धरे बैठे रहें और वैश्विक क्रांति का इंतजार करें? क्या सारा जोर वैश्विक क्रांति (क्रांति के निर्यात) पर लगा दें? क्या तदर्थ तरीके से कुछ समाजवादी कदम उठायें और इस बात को इंतजार करें कि वैश्विक क्रांति भविष्य में इस स्थिति से उबार लेगी? क्या तदर्थ तरीके से कुछ समाजवादी कदम उठायें और साथ ही साथ वैश्विक क्रांति पर जोर लगायें? या क्या स्पष्ट परिप्रेक्ष्य और इस विश्वास के साथ समाजवाद का निर्माण करना शुरू करें कि समाजवाद का निर्माण सोवियत संघ में संभव है तथा यही वैश्विक क्रांति को नजदीक लाने का सबसे कारगर तरीका है।

वक्त गुजरने के साथ लेनिन अंतिम बात पर जोर देने लगे तथा इसी दिशा में बढ़ने लगे जबकि ट्राट्स्की इसके पहले वाले रास्ते का पक्षधर था। लेनिन के बाद स्टालिन ने ट्राट्स्की को खारिज करते हुए लेनिन की लाइन को आगे बढ़ाया।

यहां यह बात याद रखना जरूरी है कि मेंशेविक क्रांति से पहले वाली अपनी लाइन को ही आगे बढ़ाते हुए फरवरी क्रांति के बाद यही दृढ़तापूर्वक कहते रहे कि रूस अभी समाजवादी क्रांति और समाजवादी समाज के निर्माण के लिए तैयार नहीं है इसलिए मजदूरों को सत्ता पर कब्जा नहीं करना चाहिए। दूसरे इंटरनेशनल के तमाम गद्दार नेता भी यही कहते रहे कि रूस अभी समाजवाद के लिए तैयार नहीं है। इन सारे ही नेताओं को जवाब देते हुए और रूस में मजदूरों द्वारा सत्ता पर कब्जे का बचाव तथा वहां समाजवाद के निर्माण को जायज ठहराते हुए लेनिन ने 1923 में लिखा:

> "... उनकी यह दलील बेहद घिसी-पिटी है, जो उन्होंने पश्चिम यूरोपीय सामाजिक-जनवाद के विकास के जमाने में कंठस्थ कर ली थी और जो यह है कि हम समाजवाद के लिए अभी तक परिपक्व नहीं हुए हैं, कि हमारे यहां, जैसा कि उनमें से भिन्न-भिन्न प्रकार के "विद्वान" सज्जन कहा करते हैं, समाजवाद के लिए वस्तुगत आर्थिक पूर्वाधार नहीं हैं। किसी के दिमाग में भी यह सवाल नहीं उठता: क्या यह नहीं हो सकता कि कोई जनता अपने को ऐसी क्रांतिकारी स्थिति में पाकर, जैसी कि पहले साम्राज्यवादी युद्ध ने पैदा की थी, क्या यह नहीं हो सकता कि कोई जनता अपनी निस्तारहीन स्थिति के प्रभाव में आकर ऐसे संघर्ष में कूद पड़े, जो उसे सभ्यता के आगे विकास के लिए अपने वास्ते ऐसी अवस्थाएं, जो सर्वथा सामान्य न हों, हासिल करने का कुछ न कुछ मौका दे?
>
> "'रूस उत्पादक शक्तियों के विकास की ऐसी बुलंदी पर नहीं पहुंचा है, जिसके अंतर्गत समाजवाद संभव हो सकता है।'

" इस प्रस्थापना को लेकर दूसरे इंटरनेशनल के सारे सूरमा, जिनमें, निस्संदेह, सुखानोव भी शामिल है, दरअसल वैसे ही धमा-चौकड़ी मचा रहे हैं, जैसे कोई बच्चा नया खिलौना पाकर मचाता है। वे इस निर्विवाद प्रस्थापना का हजारों सुरों में राग अलापते रहते हैं और उन्हें यह लगता है कि यह हमारी क्रांति के मूल्यांकन की निर्णायक कसौटी है। ...

" यदि समाजवाद के निर्माण के लिऐ संस्कृति का एक निश्चित स्तर अपेक्षित है (हालांकि यह कोई नहीं कह सकता कि "संस्कृति का" यह स्तर निश्चित 'स्तर' क्या होता है, इसलिए कि वह प्रत्येक पश्चिम यूरोपीय राज्य में अलग-अलग है), तो क्यों हम इस तरह शुरूआत नहीं कर सकते कि पहले इस निश्चित स्तर के लिए क्रांतिकारी ढंग से पूर्वाधार हासिल करें और **फिर** मजदूर किसान सत्ता तथा सोवियत व्यवस्था के आधार पर जनगण की बराबरी पर पहुंचने के लिए आगे बढ़ें।

" समाजवाद के निर्माण के लिए, आप कहते हैं, सभ्यता की अपेक्षा की जाती है। बहुत अच्छा । पर हम यह क्यों नहीं कर सकते कि अपने यहां सभ्यता के लिए जमींदारों के निष्कासन, रूसी पूंजीपतियों के निष्कासन जैसे पूर्वाधारों की ओर बढ़ें? आपने किन पुस्तकों में पढ़ा है कि सामान्य ऐतिहासिक घटनाक्रम के रूप में ऐसे रूपान्तरण अनुचित या असंभव हैं।" (लेनिन, 'हमारी क्रांति', वही, खण्ड़ -10, पृष्ठ-336-337, जोर मूल में)

यहां यह गौर करने की बात है कि लेनिन सुखानोव जैसे लोगों को जवाब देते हुए यह नहीं कहते कि हम कुछ समाजवादी कदम उठाते रहेंगे और तब तक विश्व क्रांति विजयी हो जायेगी जो रूस की पिछड़ी उत्पादक शक्तियों तथा पिछड़ी संस्कृति के सवाल को हल कर देगी। यहां लेनिन खुद ही समाजवाद के लिए पूर्वाधार तैयार करने और फिर समाजवाद की ओर बढ़ने की बात करते हैं। एक देश में समाजवाद के निर्माण के सवाल पर लेनिन का रुख स्पष्ट था।

लेकिन इतना ही स्पष्ट यह भी था कि ट्राट्स्की लेनिन और बोल्शेविकों के रूस में समाजवाद के निर्माण की लाइन का विरोधी था। वह सतत क्रांति की अपनी 1905 या 1915 की लाइन पर कायम था। लेकिन वस्तुगत स्थितियों के दबाव में वह किंचित पीछे भी हटता गया। 1905 में उसने कहा था कि बिना यूरोपीय क्रांति के रूस में मजदूरों की सरकार टिक नहीं सकती और बिना राजकीय सहायता के वहां समाजवाद का निर्माण नहीं हो सकता। 1917 में क्रांति हो जाने के बाद और सर्वहारा के राज्य के टिक जाने के बाद उसने कहना शुरू किया सर्वहारा तानाशाही बनी तो रह सकती है लेकिन समाजवादी कदम बिना यूरोपीय क्रांति के नहीं उठाये जा सकते। फिर 1924 में उसने कहना शुरू किया कि समाजवादी कदम तो उठाये

जा सकते हैं लेकिन समाजवादी समाज कायम नहीं हो सकता। अंततः 1932 -1935 तक जब सोवियत संघ में समाजवादी समाज कायम हो गया तो उसने कहना शुरू किया कि यह समाजवादी समाज नहीं है क्योंकि केवल समाजवादी सम्पत्ति के रूपों का कायम हो जाना समाजवाद नहीं है । समाजवाद तभी माना जा सकता है जब देश की उत्पादक शक्तियां पूंजीवादी देशों की उत्पादक शक्तियों से उन्नत हों।

इस तरह एक देश में समाजवाद के निर्माण के सवाल पर पीछे हटते हुए उसने अंततः समाजवाद की परिभाषा ही बदल दी। उसने उत्पादन सम्बन्ध के बदले उत्पादक शक्तियों के विकास की तुलना को अपना आधार बना लिया। यह उसका मार्क्सवाद को 'उन्नत स्तर' पर पहुंचाना था। यह इस बात का प्रमाण है कि गलत सैद्धान्तिक प्रस्थापना कैसे सिद्धान्तों में परिवर्तन तक ले जाती है। लेकिन पहले ट्राट्स्की को ही सुन लें:

> " रूस पूंजीवाद की श्रृंखला में सबसे मजबूत नहीं बल्कि सबसे कमजोर कड़ी था। वर्तमान सोवियत संघ वैश्विक अर्थव्यवस्था से ऊंचे स्तर पर नहीं खड़ा है अपितु यह केवल पूंजीवादी देशों तक पहुंचने की कोशिश कर रहा है। यदि मार्क्स ने अपने युग के सबसे विकसित पूंजीवाद की उत्पादक शक्तियों के समाजीकरण के आधार पर बनने वाले समाज को कम्युनिज्म का पहला चरण कहा तो यह उपाधि सोवियत संघ पर लागू नहीं होती जो पूंजीवादी देशों की तुलना में तकनीक, संस्कृति और जीवन की अच्छी चीजों में काफी पीछे है। इसलिए वर्तमान सोवियत निजाम को उसके सारे अंतरविरोधों समेत एक समाजवादी निजाम के बदले पूंजीवाद से समाजवाद की ओर संक्रमण के लिए तैयारी वाला निजाम कहना ज्यादा सच होगा।" **(L.Trotsky,'Revolution Betrayed',Internet edition, file://G:\ Library\ archive\Trotsky \Works \1936-rev \choshtm ,Chapter - 3, page -2** अनुवाद हमारा)
>
> " मार्क्स ने कहा था-'सारी बचत'–और इसका मतलब है सभ्यता के सभी चरणों में प्रकृति के साथ मानव का संघर्ष – 'अपने अंतिम विश्लेषण में समय की बचत बन जाती है।' अपने प्राथमिक अर्थ में इतिहास केवल काम के समय में बचत के लिए संघर्ष है। समाजवाद को केवल शोषण के खात्मे से जायज नहीं ठहराया जा सकता; इसे पूंजीवाद से ज्यादा समय की बचत करनी होगी। इस शर्त के पूरा हुए बिना शोषण का खात्मा केवल एक नाटकीय घटना होगा जिसका कोई भविष्य नहीं होगा। ˙ समाजवादी तरीके को लागू करने का पहला ऐतिहासिक अनुभव दिखाता है कि इनमें महान संभावनाएं निहित हैं। लेकिन सोवियत अर्थ व्यवस्था इसका इस्तेमाल करने से सीखने से अभी बहुत दूर है उस चीज को जो संस्कृति का सबसे कीमती कच्चा माल है। आयातित तकनीक, जो समय की बचत का मुख्य उपादान है, सोवियत जमीन पर वह परिणाम नहीं दे पा रही है जो इसकी पूंजीवादी मातृभूमि में आम है। इन अर्थों में, सारी सभ्यता के लिए निर्णायक, समाजवाद

अभी विजयी नहीं हुआ है। इसने दिखा दिया है कि यह विजयी हो सकता है और होना चाहिए। लेकिन अभी वह विजयी नहीं हुआ है। इसके विरोध में सारी बात अज्ञानता और धोखाधड़ी का परिणाम है।'' (वही, Chepter-4 page-8)

ट्राट्स्की ने यह सैद्धान्तिक कसरत वैश्विक पैमाने पर ही समाजवादी समाज के निर्माण की अपनी अवधारणा को सही ठहराने के लिए की। यहां से शुरू करके कि रूसी समाज के पिछड़ेपन का समाधान यूरोपीय क्रांति में ही हो सकता है वह वैश्विक पैमाने पर ही समाजवाद के एकमात्र सम्भव रास्ते के नतीजे पर पहुंचा था। वह किसी अन्य रास्ते की सम्भावना से दृढ़तापूर्वक इंकार करता था। लेकिन जब उसके सिद्धान्तों को ठुकराते हुए रूस में समाजवाद का निर्माण हो गया तो उसने अपने सिद्धान्त को बचाने के लिए समाजवादी समाज का नया मापदंड गढ़ लिया। समाजवादी उत्पादन सम्बन्धों का कायम हो जाना और शोषण का खात्मा ही अब उसके लिए मापदंड नहीं रह गये। अब वह किसी देश की समाजवादी समाज को मान्यता तभी दे सकता था जब उसकी उत्पादक शक्तियां पूंजीवादी देशों से आगे निकल जायें।

यह खुद उसके 1906 के तर्कों का खण्डन था। तभी उसने समाजवाद के विरोधियों को जवाब देते हुए, जो पिछड़ी तकनीक की बात करते थे, यह लिखा था कि समाजवाद तो तभी से संभव है जब से तकनीक इतनी उन्नत हो गई कि व्यक्तिगत उत्पादन के मुकाबले सामूहिक उत्पादन ज्यादा उत्पादक हो। और यह पूंजीवाद में बहुत पहले ही हो चुका है। अब वह इससे हटकर दो देशों के बीच समाजवादी देश और सबसे विकसित पूंजीवादी देश की तकनीक की तुलना करने लगा। अब उसके लिए यह मापदंड नहीं रह गया कि समाजवाद के लिए यह जरूरी है कि तकनीक का इतना विकास हो कि उसके बल पर सामूहिक उत्पादन संभव हो जाय और मनुष्य द्वारा मनुष्य का शोषण समाप्त कर दिया जाय। इसके बाद उत्पादन का विकास और जीवन स्तर में सुधार समाजवाद से साम्यवाद में संक्रमण का पूर्वाधार बनेगा। इस नये मापदंड के हिसाब से 1850 के इंग्लैंड में समाजवाद संभव था लेकिन 1935 के सोवियत संघ में नहीं हालांकि इस समय की सोवियत संघ की उत्पादक शक्तियां तब के इंग्लैंड से ज्यादा विकसित थीं।

ट्राट्स्की के इस नये मापदंड का क्या मतलब था? यही कि समाजवाद का वैश्विक पैमाने पर ही निर्माण संभव है। इसके बिना समाजवादी समाज चाहे जितना उन्नत हो जाय, वह समाजवादी नहीं होगा। तर्क कुछ इस प्रकार था। यदि समाजवाद तभी माना जायेगा जब उसकी उत्पादक शक्तियां पूंजीवादी समाज की उत्पादक शक्तियों से उन्नत हों तो यह केवल तीन तरीकों से संभव है: पहला, विश्व क्रांति हो जाय। यदि एक ऐसा हो जायेगा तो स्वतः वैश्विक पैमाने पर समाजवाद कायम हो जायेगा। तुलना के लिए कोई पूंजीवादी देश

बचेगा ही नहीं । दूसरा, दुनिया के सबसे उन्नत देश में क्रांति हो जाय और वहां समाजवाद कायम हो जाय। लेकिन ऐसा होने की सूरत में यह स्पष्ट है कि उसके क्रांति के पहले के वैश्विक सम्बन्धों और उसमें समाजवाद के निर्माण के प्रभाव के कारण विश्व क्रांति हो जायेगी। यानी इस तरीके से भी बात वैश्विक पैमाने पर समाजवाद के निर्माण तक पहुंचती है। तीसरा, किसी पिछड़े देश में समाजवादी सम्पत्ति सम्बन्धों का निर्माण होने के बाद उसे अपनी उत्पादक शक्तियों को विकसित करने का इतना लम्बा समय मिले कि उसकी उत्पादक शक्तियां सबसे विकसित पूंजीवादी देश से भी आगे निकल जायें। लेकिन ट्राट्स्की की आशा के अनुसार इसके पहले ही वैश्विक क्रांति हो जायेगी। इस तरह ट्राट्स्की ने समाजवादी समाज का वह मापदंड पेश कर दिया जिसका प्रकारान्तर से मतलब वैश्विक क्रांति और वैश्विक पैमाने पर समाजवाद का निर्माण ही निकलता था। यदि ऐसा नहीं था तो ट्राट्स्की उस समाज को समाजवादी मानने का तैयार नहीं था। इस तरह अपने सिद्धान्त का 'विकास' करके उसने यथार्थ के सामने अपने सिद्धान्त को पराजित होने से बचा लिया। इस प्रक्रिया में मार्क्सवाद की दुर्गति हो गयी तो ठेंगे से आखिर लेनिन ने यूं ही तो ट्राट्स्की को अति आत्म विश्वासी नहीं कहा था!

एक देश में समाजवाद के निर्माण के मामले में इतिहास ने अंततः क्या साबित किया ? यही कि लेनिन-स्टालिन सही थे और ट्राट्स्की गलत। लेकिन यदि ट्राट्स्की के हिसाब से ही सोवियत संघ चला होता तो क्या होता? ट्राट्स्की इस बात का पक्षधर था कि सोवियत संघ में औद्योगिकरण व सामूहिकीकरण का कदम उठाते हुए भी वैश्विक पैमाने पर समाजवाद के निर्माण का ही परिप्रेक्ष्य सामने रखा जाय। लेकिन वस्तुतः वैश्विक क्रांति तो हुई नहीं। यदि सोवियत संघ में समाजवाद का निर्माण नहीं हुआ होता क्या वह द्वितीय विश्व युद्ध में बच पाता? (ट्राट्स्की ने 1936 में भविष्यवाणी की कि आने वाले विश्व युद्ध में यदि विश्व क्रांति नहीं होती तो सोवियत संघ में हार या जीत दोनों ही अवस्थाओं में पूंजीवाद की पुनर्स्थापना हो जायेगी यानी मजदूर राज खतम होकर सीधे-सीधे पूंजीपतियों का राज कायम हो जायेगा। यह खुश्चेव जैसी पुनर्स्थापना की बात नहीं थी।) यदि वह द्वितीय विश्व युद्ध में ध्वस्त हो गया होता तो क्या आज दुनिया का इतिहास वही होता जो आज है? चलिये मान लिया जाय कि ट्राट्स्की के हिसाब से औद्योगीकरण व सामूहिकीकरण के कारण सोवियत संघ तब भी वैसे ही जंग जीत जाता जैसे वह वास्तव में जीता। लेकिन वैश्विक क्रांति तो फिर भी नहीं हुई । फिर क्या करते? और इस बीच समाजवाद के परिप्रेक्ष्य के बिना सोवियत सर्वहारा राज कब का पतित होकर खत्म हो गया होता? क्या सोवियत संघ खुश्चेव काल तक भी पहुंच पाता? ट्राट्स्की कह सकता था कि वैश्विक क्रांति इसलिए नहीं हुई क्योंकि सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी

की आंतरिक और वाह्य नीतियां गलत थीं। लेकिन लेनिन की तो सारी नीतियां सही थीं। फिर उस समय क्रांतियां एक के बाद एक क्यों असफल हो गई? वैश्विक क्रांति न होने को स्टालिन के मत्थे मढ़ना हद दर्जे का भाववाद है जिसका दिवालियापन इससे साबित हो जाता है कि यही आरोप लेनिन पर नहीं मढ़ा जाता।

III

औपनिवेशिक व अर्ध-औपनिवेशिक देशों में सतत क्रांति

औपनिवेशिक व अर्ध-औपनिवेशिक देशों के मामले में तीसरे इंटरनेशनल ने लेनिन के नेतृत्व में अपनी लाइन तय की। इसके लिए इसकी दूसरी कांग्रेस में थीसिसों का मसौदा खुद लेनिन ने तैयार किया। इस थीसिस को एम.एन. राय की अनुपूरक थीसिसों के साथ स्वीकार किया गया। राष्ट्रीय और औपनिवेशिक सवाल पर अपनी मसौदा थीसिसों में लेनिन लिखते हैं :

> "II. उन पिछड़े देशों के मामलों में, जिनमें सामंती या पितृसत्तात्मक और पितृसत्तात्मक-किसान सम्बन्ध प्रभुत्वशाली हैं, यह खास तौर पर महत्वपूर्ण है कि इन चीजों का ध्यान रखा जाय :
>
> " सबसे पहले, कि सभी कम्युनिस्ट पार्टियों को इन देशों में बुर्जुआ-जनवादी मुक्ति आंदोलनों की मदद करनी चाहिए और कि सबसे सक्रिय सहायता देने की जिम्मेदारी प्रथमतः उस देश के मजदूरों की बनती है जिस पर वह पिछड़ा राष्ट्र औपनिवेशिक या वित्तीय तौर पर निर्भर है।.
> .. ...
>
> " चौथा, इस बात की आवश्यकता है कि पिछड़े देशों में जमींदारों के खिलाफ,जमीनी सम्पत्ति के खिलाफ और सामंतवाद के सभी प्रकार के अवशेषों के खिलाफ किसान आंदोलन को विशेष समर्थन दिया जाय और इस बात का प्रयास किया जाय कि पूरब के, उपनिवेशों के और आम तौर पर पिछड़े देशों के क्रांतिकारी किसान आंदोलन और पश्चिमी यूरोपीय कम्युनिस्ट सर्वहारा के बीच हर संभव नजदीकी सम्बन्ध स्थापित कर किसान आंदोलन को ज्यादा से ज्यादा क्रांतिकारी चरित्र प्रदान किया जाय। यह खास तौर पर जरूरी है कि सोवियत व्यवस्था के बुनियादी उसूलों को उन देशों में लागू करने के लिए हर प्रयास किया जाय जहां पूर्व पूंजीवादी सम्बन्ध प्रधान हैं–

'मेहनतकश जनता की सोवियत' इत्यादि का गठन करके।" (लेनिन, 'कम्युनिस्ट इंटरनेशनल की दूसरी कांग्रेस के लिए राष्ट्रीय और औपनिवेशिक सवाल पर मसौदा थीसिस',Sellected Works in three VoI, Progress Publishers, Moscow, Vol-III, Page-376,अनुवाद हमारा)

बाद में इन थीसिसों को स्वीकार करते समय सब जगह बुर्जुआ-जनवादी आंदोलन के बदले राष्ट्रीय-क्रांतिकारी आंदोलन कर दिया गया। लेनिन ने स्पष्ट किया कि सारे राष्ट्रीय आंदोलनों का अंतर्य बुर्जुआ-जनवादी ही होता है फिर भी यदि बुर्जुआ-जनवादी के बदले राष्ट्रीय-क्रांतिकारी शब्द इस्तेमाल किया जा रहा है तो केवल इसलिए कि इन आंदोलनों में सुधारवादी तत्वों को क्रांतिकारी से फर्क किया जा सके और सुधारवादियों को अलगाव में डाला जा सके। लेनिन ने कहा था :

" तीसरा, मैं पिछड़े हुए देशों में बुर्जुआ-जनवादी आंदोलन के प्रश्न पर खास तौर पर जोर देना चाहता हूं। ठीक इस प्रश्न ने कुछ मतभेदों को जन्म दिया। हमने इस पर वाद-विवाद किया कि क्या सैद्धान्तिक और उसूली तौर पर यह कहना सही होगा या नहीं कि कम्युनिस्ट इंटरनेशनल तथा कम्युनिस्ट पार्टियों को पिछड़े हुए देशों में बुर्जुआ-जनवादी आंदोलन का समर्थन करना चाहिए; इस वाद-विवाद के फलस्वरूप हम इस सर्वसम्मत निर्णय पर पहुंचे कि "बुर्जुआ- जनवादी" आंदोलन के स्थान पर राष्ट्रीय-क्रांतिकारी आंदोलन कहा जाये। इसमें रत्तीभर संदेह नहीं कि समस्त राष्ट्रीय आंदोलन बुर्जुआ जनवादी आंदोलन मात्र हो सकते हैं, इसलिए कि पिछड़े हुए देशों में आबादी की बहुसंख्या मुख्यतया किसानों की है,जो बुर्जुआ जनवादी सम्बन्धों का प्रतिनिधित्व करते हैं। यह सोचना कल्पनावाद होगा कि पिछड़े हुए देशों में सर्वहारा पार्टियां, यदि वे सामान्यतया वहां जन्म ले सकें, किसान आंदोलन के साथ निश्चित सम्बन्ध न बनाते हुए, उसे अमल में समर्थन न देते हुए इन देशों में कम्युनिस्ट कार्यनीति तथा कम्युनिस्ट नीति को क्रियान्वित कर सकती है। परन्तु यहां आपत्ति की गई है कि यदि हम बुर्जुआ-जनवादी आंदोलन की बात करते हैं, तो हम सुधारवादी तथा क्रांतिकारी आंदोलनों के बीच सारे फर्क को मिटा देते हैं। परन्तु इस बीच यह अन्तर पिछड़े हुए और औपनिवेशिक देशों में हाल में पूर्ण स्पष्टता के साथ उजागर हुआ है, इसलिए कि साम्राज्यवादी बुर्जुआ वर्ग उत्पीड़ित जनगण के बीच भी सुधारवादी आंदोलन रोपने के लिए पूरी शक्ति से यत्न कर रहा है। शोषक तथा औपनिवेशिक देशों के बुर्जुआ वर्ग के बीच कुछ सामीप्य स्थापित हुआ है,जिसके कारण बहुत अक्सर–शायद अधिकांश मामलों तक में–उत्पीड़ित देशों का बुर्जुआ वर्ग हालांकि राष्ट्रीय आंदोलन का समर्थन करता है परन्तु इसके साथ ही उसकी साम्राज्यवादी बुर्जुआ वर्ग के साथ सहमति भी है, यानी उसके साथ मिलकर वह सभी क्रांतिकारी आंदोलनों, क्रांतिकारी वर्गों के विरुद्ध लड़ता है। आयोग में यह अकाट्य रूप से सिद्ध किया गया

तथा हमने यह माना कि एकमात्र सही चीज यह है कि इस अंतर को ध्यान में रखा जाय। तथा लगभग सब जगह "बुर्जुआ-जनवादी" शब्दों के स्थान पर "राष्ट्रीय-क्रांतिकारी" शब्द रख दिये जायें। इस परिवर्तन का अर्थ यह है कि हम लोगों को, कम्युनिस्टों को उपनिवेशों में बुर्जुआ-स्वातंत्र्य आंदोलनों का केवल उस रूप में अवश्य समर्थन करना चाहिए तथा हम समर्थन करेंगे, जब ये आंदोलन वस्तुतः क्रांतिकारी हों, जब उनके प्रतिनिधि किसानों तथा शोषितों के व्यापक जनसमुदायों को क्रांतिकारी भावना में शिक्षित- दीक्षित करने तथा संगठित करने में हमारी राह में बाधक न बनें। यदि ये अवस्थाएं भी विद्यमान न हों, तो कम्युनिस्टों को इन देशों में सुधारवादी-बुर्जुआ के विरूद्ध अवश्य लड़ना होगा, जिसमें दूसरे इंटरनेशनल के सूरमा भी शामिल हैं।..." (लेनिन, 'राष्ट्रीय तथा औपनिवेशिक प्रश्नों से संबन्धित आयोग की रिपोर्ट', वही, खण्ड-10,पृष्ठ-43-44)

इसके बाद लेनिन ने यह सवाल उठाया कि क्या वहां भी सोवियतें कायम की जा सकती हैं, किसानों की सोवियतें, जहां सर्वहारा लगभग नहीं के बराबर है तथा क्या ये देश सीधे, पूंजीवाद को लांघते हुए कम्युनिज्म की ओर जा सकते हैं? उन्होंने जवाब दिया :

"...वहां शुद्ध सर्वहारा आंदोलन का सवाल नहीं उठ सकता। इन देशों में औद्योगिक सर्वहारा वर्ग लगभग नहीं है। इसके बावजूद हमने वहां (जारशाही के भूतपूर्व उपनिवेशों–तुर्किस्तान इत्यादि- सम्पादक) नेतृत्वकारी भूमिका ग्रहण की और हमें अवश्य करनी चाहिए । हमारे काम ने हमारे सामने यह सिद्ध किया है कि इन देशों में जबर्दस्त कठिनाइयों पर पार पाना होगा, परन्तु हमारे काम के व्यवहारिक फलों ने हमें यह भी बताया है कि इन कठिनाइयों के बावजूद जनसाधारण में स्वतंत्र राजनीतिक चिंतन की तथा स्वतंत्र राजनीतिक कार्यकलाप की भावना वहां भी जगाई जा सकती है, जहां सर्वहारा वर्ग लगभग नहीं है।...सोवियत संगठन का विचार सीधा-साधा है और केवल सर्वहारा ही नहीं, अपितु कृषक सामंतवादी और अर्द्धसामन्तवादी सम्बन्धों पर भी उसे लागू किया जा सकता है।..." (वही, पृष्ठ-45)

"...कम्युनिस्ट इंटरनेशनल को यह प्रस्थापना प्रस्तुत करनी तथा सैद्धान्तिक रूप से उसकी पुष्टि भी करनी होगी कि अग्रगामी देशों के सर्वहारा वर्ग की सहायता से पिछड़े हुए देश सोवियत व्यवस्था की ओर तथा विकास के निश्चित चरणों से होते हुए, विकास की पूंजीवादी मंजिल को लांघते हुए कम्युनिज्म की ओर बढ़ सकते हैं।" (वही पृष्ठ-47)

लेनिन की यही प्रस्थापनाएं तीसरे इंटरनेशनल की उपनिवेशों और अर्ध- उपनिवेशों के बारे में लाइन का आधार बनीं।

जैसा कि सर्वविदित है, तीसरे इंटरनेशनल की दूसरी कांग्रेस में लेनिन की इन बातों पर ट्राट्स्की की सहमति थी। लेकिन यह वास्तविक सहमति नहीं, केवल जुबानी सहमति थी। लेनिन के दृश्यपटल से हटते ही ट्राट्स्की ने अपनी वही पुरानी सतत क्रांति वाली लाइन उपनिवेशो व अर्ध-उपनिवेशों के मामले में भी आगे बढ़ानी शुरू कर दी। शुरू में उसने चीनी क्रांति के व्यवहारिक सवाल पर यह काम करना शुरू किया–इंटरनेशनल की थीसिसों को मानने का दिखावा करते हुए । लेकिन 1928 आते-आते उसने उससे अलग अपनी मुकम्मल प्रस्थापना पेश कर दी। (देखें परिशिष्ट)

उसने कहा कि इन देशों में भी क्रांति में बुर्जुआ वर्ग की कोई भूमिका नहीं बनती है, वह क्रांति का दुश्मन है। उसके साथ कोई भी मोर्चा क्रांति के लिए घातक है। उसने दूसरी कांग्रेस के क्रांतिकारी व सुधारवादी बुर्जुआ के फर्क को नकार दिया तथा सारे बुर्जुआ वर्ग को क्रांति के दुश्मनों की श्रेणी में रख दिया।

इसके बाद वह आगे बढ़ा और घोषित किया कि इन देशों में भी मजदूरों -किसानों का क्रांतिकारी जनवादी अधिनायकत्व कायम नहीं होगा बल्कि वहां भी सर्वहारा की तानाशाही ही कायम होगी। केवल सर्वहारा की तानाशाही के तहत ही इन देशों में भी बुर्जुआ-जनवादी क्रांति के कार्यभार अंजाम दिये जा सकते हैं। उसके अनुसार इन देशों में भी बुर्जुआ-जनवादी और समाजवादी क्रांति के कार्यभार एक साथ अंजाम दिये जायेंगे। दोनों को अलग-अलग अंजाम देना संभव नहीं है।

उसने लिखा :

> "...चीन में जमीदारों की जागीरें लगभग नहीं हैं,जारकालीन रूस के मुकाबले जमींदार पूंजीपतियों से ज्यादा नजदीकी से जुड़े हुए हैं और इसलिए जारकालीन रूस के मुकाबले चीन में कृषि क्रांति का विशिष्ट महत्व काफी कम होगा; लेकिन दूसरी ओर राष्ट्रीय मुक्ति का सवाल काफी बढ़ा है। तदनुरूप देश के जनवादी रूपान्तरण के लिए चीनी किसानों के **स्वतंत्र** क्रांतिकारी राजनीतिक संघर्ष की क्षमता रूसी किसान समुदाय से निश्चित तौर पर ज्यादा नहीं होगी। इसने इस बात में अपनी अभिव्यक्ति पायी कि न तो 1925 से पहले और न ही चीन में क्रांति के तीन सालों में कोई नरोदनिक (लोकप्रियतावादी)पार्टी पैदा हुयी है जो अपने झंडे पर कृषि क्रांति अंकित कर सके। यह सब मिलाकर यह प्रदर्शित करता है चीन के लिए, जो 1925-27 का अनुभव पहले ही पीछे छोड़ चुका है, जनवादी अधिनायकत्व का सूत्र उससे कहीं ज्यादा प्रतिक्रियावादी खतरा पैदा करता है जितना कि उसने फरवरी क्रांति के बाद पैदा किया था।"(L.Trotsky,'Permanent Revolution', Internet edition,File://G:\Liberary\ archive\ Trotsky\ Works\ 1931-tpv\ Pio7, htm, Chapter-VII, Page-2, अनुवाद हमारा, जोर मूल में)

"...कि वर्तमान निजाम को उखाड़ फेंकने और सत्ता को जनता के हाथों में हस्तांतरित करने का काम नयी चीनी क्रांति केवल सर्वहारा वर्ग के अधिनायकत्व के रूप में ही कर सकती है ।

" कि सर्वहारा वर्ग अधिनायकत्व से अलग 'सर्वहारा और किसान समुदाय का जनवादी अधिनायकत्व' जो किसानों को नेतृत्व प्रदान करेगा और जनवाद का कार्यक्रम लागू करेगा एक कपोल कल्पना है, एक आत्म-प्रवंचना है या और यह ज्यादा बुरी बात है, केरेन्स्कीवाद या क्वोमिंतांगवाद है।" (वही, Chapter-9,Page-3)

" विकसित और पिछड़े देशों में फर्क किन बातों में मौजूद है? फर्क बहुत ज्यादा है लेकिन तब भी यह पूंजीवादी सम्बन्धों की प्रधानता की सीमाओं के भीतर ही है। विभिन्न देशों में बुर्जुआ शासन के रूपों और तरीकों में काफी फर्क है। एक छोर पर यह प्रभुत्व नंगा और निरपेक्ष चरित्र प्रदर्शित करता है–**संयुक्त राज्य**। दूसरे छोर पर वित्तीय पूंजी अपने को कालातीत हो चुके एशियाई मध्ययुगीनता के अनुरूप ढाल लेती है, उसे अपने अधीन कर और अपने तरीके उस पर थोपकर–**भारत**। लेकिन दोनों जगह बुर्जुआ ही शासन करता है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि विभिन्न पूंजीवादी देशों में सामाजिक आधार, राजनीतिक रूप, तात्कालिक कार्यभार तथा कार्य की गति में सर्वहारा वर्ग का अधिनायकत्व बहुत विविध चरित्र ग्रहण करेगा। लेकिन साम्राज्यवादियों, सामंतवादियों और राष्ट्रीय बुर्जुआ के ब्लाक पर विजय पाने के लिए जनता का नेतृत्व केवल सर्वहारा वर्ग के क्रांतिकारी प्रभुत्व में ही सम्पन्न किया जा सकता है जो सत्ता पर कब्जे के बाद अपने को सर्वहारा वर्ग के अधिनायकत्व में रूपान्तरित कर लेगा।" (वही, Chapter-7,Page-7, जोर मूल में)

ट्राट्स्की की इन थीसिसों से एक सीधा सा सवाल उठ खड़ा हुआ कि यदि औपनिवेशिक व अर्ध-औपनिवेशिक देशों में बुर्जुआ-जनवादी क्रांति के कार्यभार केवल सर्वहारा की तानाशाही के तहत पूरे हो सकते हैं वह भी समाजवादी कार्यभारों के साथ मिलकर तो फिर उन देशों का क्या होगा जहां सर्वहारा लगभग नहीं है या जहां सर्वहारा की तानाशाही की संभावनाएं नहीं हैं। बिना सर्वहारा के हुए तो सर्वहारा की तानाशाही कायम नहीं हो सकती। इस प्रश्न का जवाब देते हुए ट्राट्स्की ने साफ घोषित किया कि जिन देशों में सर्वहारा की तानाशाही कायम होने की संभावना नहीं है वहां बुर्जुआ-जनवादी क्रांति के कार्यभार पूरे नहीं हो सकते (देखें परिशिष्ट का बिन्दु- 11)। ट्राट्स्की की यह प्रस्थापना लेनिन की प्रस्थापनाओं के एकदम खिलाफ थीं। लेनिन ने किसान सोवियतों की बातें की थीं और उन देशों की बुर्जुआ-जनवादी क्रांति के लिए लाइन पेश की थी जहां सर्वहारा लगभग नहीं है। यानी इन देशों में लेनिन ने न केवल बुर्जुआ-जनवादी क्रांति

होने की संभावना व्यक्त की थी बल्कि यहां तक कहा था कि समाजवादी देशों के सर्वहारा की मदद से ये देश पूंजीवादी मंजिल लांघते हुए सीधे कम्युनिज्म की ओर जा सकते हैं। ट्राट्स्की ने इस सबको नकार दिया और घोषित कर दिया कि जिन देशों में सर्वहारा की तानाशाही कायम नहीं हो सकती वहां बुर्जुआ-जनवादी क्रांति के कार्यभार पूरे नहीं हो सकते। पहले उसने एक अकेले पूंजीवादी देश में समाजवाद के निर्माण की संभावना से इंकार किया था, अब उसने राष्ट्रीय मुक्ति को भी नकार दिया क्योंकि साफ है कि किसी औपनिवेशिक या अर्ध-औपनिवेशिक देश में सर्वहारा की तानाशाही अपने दम पर नहीं टिक सकती। यानी अब न केवल समाजवाद का निर्माण बल्कि राष्ट्रीय मुक्ति भी विश्व क्रांति पर निर्भर हो गये। राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलनों के लिए इससे ज्यादा हतोत्साहित करने वाली कोई अन्य चीज नहीं हो सकती थी। यह इस बात का खालिस नमूना थी कि "वामपंथी" लफ्फाजी किस कदर दक्षिणपंथी हो सकती है।

इन देशों के लिए भी सर्वहारा की तानाशाही की बात करने से एक अन्य सवाल भी पैदा हुआ। यदि इन देशों में बुर्जुआ-जनवादी कार्यभार सर्वहारा की तानाशाही के तहत ही पूरे हो सकते हैं, वह भी, उसी समय समाजवादी कदमों के साथ ही तो क्या इतने पिछड़े देश भी समाजवाद की ओर जा सकते हैं? क्या इनकी अत्यन्त पिछड़ी उत्पादक शक्तियां इस बात की इजाजत देती हैं कि यहां सीधे समाजवाद कायम किया जा सके? ट्राट्स्की ने इसका जवाब दिया कि इस रूप में सवाल उठाना ही गलत है। देश चाहे विकसित हो या अविकसित उनमें समाजवाद का निर्माण केवल वैश्विक क्रांति के बाद वैश्विक पैमाने पर ही हो सकता है। इसलिए समाजवाद के निर्माण के लिए देशों के परिपक्व या अपरिपक्व होने का सवाल उठाना ही गलत है। अमेरिका-जर्मनी भी उतना ही अपने यहां समाजवाद का निर्माण कर सकते जितना कि चीन या भारत। ज्यादा से ज्यादा रफ्तार का फर्क हो सकता है (देखें परिशिष्ट बिन्दु-11)। इस तरह अब उसकी सतत क्रांति की थीसिस मुकम्मिल हो गई। रूस जैसे पिछड़े पूंजीवादी देश से शुरू करके उसने विकसित देशों का लपेटा और अब औपनिवेशिक व अर्ध-औपनिवेशिक देशों को भी लपेटकर वह वैश्विक क्रांति की एक मुकम्मिल रणनीति बन गई। बस यह रणनीति लेनिन की रणनीति से बिलकुल अलग और विरोधी थी।

बात यह नहीं कि ट्राट्स्की बाद में इस सिद्धान्त पर अचानक पहुंचा। उसकी चिंतन प्रक्रिया में यह सब पहले से मौजूद था। इसके बीज तो 1905 की उसकी सतत क्रांति के सिद्धान्त में ही निहित थे। 1915 में यानी रूसी क्रांति से पहले और तीसरे इंटरनेशनल की स्थापना से पहले ही उसने घोषित कर दिया था कि अब राष्ट्र के खिलाफ राष्ट्र नहीं बल्कि वर्ग के खिलाफ वर्ग खड़े हैं।

" राष्ट्रीय क्रांतियों का समय बीत गया है–कम से कम यूरोप के लिए–जैसे कि राष्ट्रीय युद्धों का समय बीत गया है। दोनों के बीच एक अंतर्निहित सम्बन्ध है। हम साम्राज्यवाद के युग में रह रहे हैं जो न केवल औपनिवेशिक कब्जे की एक व्यवस्था है बल्कि घरेलू स्तर पर एक निश्चित निजाम भी है। यह बुर्जुआ राष्ट्र को पुरानी व्यवस्था के खिलाफ नहीं खड़ा करता बल्कि सर्वहारा को बुर्जुआ राष्ट्र के खिलाफ खड़ा करता है।"(L.Trotsky, 'Result & Prospects', Chepter-10, वही, Page-3, अनुवाद हमारा)

यानी ठीक उसी समय राष्ट्रीय क्रांतियों का समय बीत जाने की उसने घोषणा की जब वास्तव में ये क्रांतियां शुरू हो रही थी। पूर्वी यूरोप और खासकर औपनिवेशिक दुनिया ठीक इसी समय सभ्यता की परिधि में खिंचकर आ रहे थे,उनमें राष्ट्रीय क्रांतियां शुरू हो रही थी। राष्ट्रीयता और राष्ट्रीय मुक्ति का सवाल इस समय खत्म नहीं हो रहा था बल्कि व्यापकता ग्रहण कर रहा था इसलिए कि पहली बार औपनिवेशिक देशों के करोड़ों-करोड़ जनगण इसकी परिधि में आ रहे थे, उनमें राष्ट्रीय जागरण, राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन शुरू हो रहे थे। राष्ट्रीयता का सवाल यूरोपीय सवाल के बदले वैश्विक सवाल बन रहा था। तीसरे इण्टरनेशनल में संगठित कम्युनिस्टों की खूबी यह थी कि उन्होंने इसे उचित महत्व प्रदान किया और दूसरे इण्टरनेशनल के अवसरवादियों की तरह अपने को यूरोप तक और वह भी औपचारिक स्वीकृति तक सीमित नहीं रखा। यह सब लेनिन की उपरोक्त रिपोर्ट में व थीसिस में ही दर्ज है।

लेनिन ने 1915 में ट्राट्स्की की इन बातों का खण्डन किया था तथा बुर्जुआ- जनवादी आंदोलन के कार्यभारों को कम कर आंकने के लिए उसे लताड़ा था। 1915 में राष्ट्रीय मुक्ति के सवाल को कालातीत बताने का मतलब साम्राज्यवाद की सबसे घृणित सेवा थी क्योंकि साम्राज्यवादियों के लिए इससे बेहतर कोई बात नहीं हो सकती थी कि राष्ट्रीय मुक्ति का सवाल अपनी पूरी गंभीरता और व्यापकता में न उठे। इस मामले में ट्राट्स्की पूर्णतया दूसरे इंटरनेशनल के अवसरवादियों के साथ खड़ा था।

उपनिवेशों और अर्ध-उपनिवेशों के मामले में अपने सिद्धान्तों को ट्राट्स्की ने व्यवहारतः चीनी क्रांति के संदर्भ में लागू करने का प्रयास किया। उसने चीनी क्रांति में 1926-27 की विफलता के लिए स्टालिन और तीसरे इंटरनेशनल की लाइन को जिम्मेदार ठहराया। उसके अनुसार यदि उसकी लाइन लागू की जाती तो चीनी क्रांति सफल हो सकती थी। अंततः इतिहास ने क्या प्रमाणित किया ?

इतिहास ने प्रमाणित किया कि चीनी क्रांति के मामले में लेनिन-स्टालिन की लाइन सही थी। चीन में क्रांति के लम्बे संघर्ष के दौरान जहां साम्राज्यवाद- सामंतवाद-दलाल बुर्जुआ क्रांति का दुश्मन साबित हुआ वहीं

क्रांतिकारी पांतों में सर्वहारा वर्ग के नेतृत्व में किसान, अन्य पेटी बुर्जुआ वर्ग तथा राष्ट्रीय बुर्जुआ शामिल हुआ। यानी समस्त बुर्जुआ वर्ग के बदले दलाल बुर्जुआ क्रांति का निशाना बना जब कि राष्ट्रीय बुर्जुआ क्रांति का ढुलमुल दोस्त। इसी तरह क्रांति की सफलता पर सर्वहारा की तानाशाही नहीं कायम हुयी बल्कि नया जनवाद कायम हुआ जो मजदूरों व किसानों का क्रांतिकारी जनवादी अधिनायकत्व था। इस अधिनायकत्व में सर्वहारा नेतृत्वकारी भूमिका में था। क्रांति के कार्यभारों में भी बुर्जुआ जनवाद के कार्यभार पहले पूरे किये गये, इसके बाद ही समाजवाद के निर्माण की ओर बढ़ा गया और इसमें काफी वक्त लगा। दोनों कार्यभार एक साथ नहीं किये गये बल्कि वे स्पष्टतः अलग-अलग पूरे किये गये। इसी तरह बाद में ही जाकर सर्वहारा की तानाशाही कायम हुई, 1949 में नहीं। इसमें भी बड़ी बात कि बुर्जुआ-जनवादी कार्यभार पूरे करने के बाद समाजवाद का निर्माण की ओर बढ़ा गया और उसे हासिल किया गया– बिना विश्व क्रांति के ही। हां, यह निश्चित तौर पर कहना होगा कि तब तक एक मजबूत समाजवादी खेमा मौजूद था। लेकिन यदि ट्राट्स्की तब जिन्दा होता तो इस समाजवादी खेमे को समाजवादी मानने से ही इंकार कर देता क्योंकि इनमें कोई भी विकसित देश शामिल नहीं था, विश्व क्रांति की तो बात ही क्या। यानी चीन की क्रांति हर तरह से ट्राट्स्की को झुठलाते हुए आगे बढ़ी और उसने लेनिन-स्टालिन की रणनीतिक लाइन को सही साबित किया। हां, चीनी क्रांति ने जो रास्ता अख्तियार किया–दीर्घकालिक लोकयुद्ध का रास्ता वह जरूर कौमिंटर्न के बताये रास्ते से भिन्न था। लेनिन-स्टालिन और कौमिंटर्न इस अद्भुत तौर पर नये रास्ते को नहीं देख पाये थे हालांकि सुखानोव पर टिप्पणी करते हुए 1923 में ही लेनिन ने कहा था :

> " हमारे यूरोपीय कूपमंडूक इस बात का सपना तक नहीं देखते कि कहीं अधिक विशाल आबादी वाले तथा विभिन्न सामाजिक अवस्थाओं की बेहद ज्यादा विविधता वाले पूरबी देशों में आगे क्रांतियों में रूसी क्रांति की तुलना में, निस्संदेह, अधिक अनुपमता होगी।" (वही, पृष्ठ-338)

लेकिन ट्राट्स्की ने और भी कम इसकी कल्पना की होगी। वह तो चीनी व भारतीय क्रांति को रूसी माडल पर ढालना चाहता था। उसने चीन में कृषि क्रांति को रूस से भी कम महत्वपूर्ण बताया। वह इसके लिए कभी तैयार नहीं था कि चीन की बुर्जुआ-जनवादी क्रांति किसान आधारित हो जाये, कि चीन में क्रांति का आधार शहर के बदले देहात हो जायें, कि देहातों से शहरों को घेरा जाये, कि क्रांति में नेतृत्वकारी भूमिका सर्वहारा की होते हुए मुख्य लड़ाकू शक्ति किसान हों, कि कम्युनिस्ट पार्टी का आधार मुख्यतया शहरों के बदले देहातों में तथा औद्योगिक मजदूरों के बदले देहाती सर्वहारा, अर्ध-सर्वहारा-गरीब-किसानों में हो। चीनी क्रांति ने उसके सिद्धान्त को पूर्णतया यथार्थ के विरोध में खड़ा कर दिया।

IV

बाद में सतत क्रांति

जैसा कि पहले इंगित किया जा चुका है 1924 व बाद की बहसों के बाद ट्राट्स्की ने अपनी सतत क्रांति की थीसिस को मुकम्मिल स्वरूप प्रदान किया। इसे इसने अपनी किताब 'सतत क्रांति' में प्रस्तुत किया जिसका जर्मन संस्करण 1930 में प्रकाशित हुआ। इसके अध्याय-10 में, अंतिम अध्याय में, ट्राट्स्की ने सतत क्रांति की अपने मुकम्मिल प्रस्थापना को बिंदुवार सूत्रों के रूप में प्रस्तुत किया। हम इस लेख के परिशिष्ट के तौर पर इस अध्याय का अधिकांश दे रहे हैं जिससे पाठक ट्राट्स्की के सिद्धान्त से अच्छी तरह परिचित हो जायें।

इस किताब की भूमिका में ट्राट्स्की लिखता है कि वह तो अपने सत्त क्रांति के सिद्धान्त को क्रांति के बाद एक तरह से भूल ही गया था। लेकिन जब 1924 से अन्दरूनी पार्टी बहसों में उसका यह सिद्धान्त घसीटा गया तो वह इसकी रक्षा के लिए आगे आया। तब भी वह इसकी बहुत सारी खामियों को सहज ही स्वीकार कर लेता था। लेकिन जब 1928 में अल्मा आटा निर्वासित किये जाने के बाद उसने अपनी पुरानी रचनाएं पढ़ीं तो पाया कि उसके सिद्धान्त में खामियां तो बहुत कम हैं। वह बेवजह खामियां स्वीकार करता रहा। उसके बाद उसने सारे मसले पर फिर गौर कर सतत क्रांति के अपने विचार को मुकम्मिल स्वरूप प्रदान किया। उसने यह भी कहा कि उसका सतत क्रांति का सिद्धान्त तथा लेनिन की 'दो कार्यनीतियों' का सिद्धान्त एक ही हैं।

ट्राट्स्की ने अपनी फितरत के हिसाब से एक बार फिर झूठ बोला। वह अपनी क्रांति पूर्व रचनाओं को भूला नहीं था और न ही अपने मूल सिद्धान्त को। 1906 की उसकी रचना 'परिणाम व संभावनाएं' का 1919 में ही नया संस्करण निकला जिसमें उसने नयी भूमिका लिखी। इसी तरह क्रांति पूर्व लिखित'शांति कार्यक्रम' संकलन 1922 में फिर प्रकाशित हुआ जिसकी भी उसने भूमिका लिखी। इसी में उसने 1922 में लिखा था कि अपनी लाइन की स्वनिर्मित सीमा के चलते बोल्शेविकों के सामने पतित होने का जो खतरा मौजूद था वह अप्रैल 1917 में लेनिन द्वारा टाल दिया गया (क्योंकि लेनिन ने अपनी लाइन बदल ली)। इस तरह अपने सतत क्रांति के सिद्धान्त को भूलने वाली बात उसकी बात सिरे से गलत थी। सही बात यह है कि

वह लेनिन की नाक के नीचे ही अपनी लाइन पर चल रहा था लेकिन लेनिन के डर के मारे धूर्तता और चालाकी वश उसे उजागर नहीं होने दे रहा था।

जब 1924-27 की बहसें चलीं तो उसने अपने सतत क्रांति के सिद्धान्त को मुकम्मल स्वरूप प्रदान किया। यथार्थ में घटी घटनाओं के मद्देनजर उसमें कुछ जोड़ा- घटाया तथा सबसे बड़ी बात यह कि उसमें औपनिवेशिक व अर्ध-औपनिवेशिक देशों को समेटा। अब यह सिद्धान्त सही मायने में "वैश्विक क्रांति" का सिद्धान्त बन गया– अमेरिका-जर्मनी से लेकर भारत-चीन तक एक ही क्रांति की रणनीति। वर्गों की एक ही संघबद्धता, राज्य का एक ही स्वरूप तथा समाजवादी समाज के निर्माण का एक ही रास्ता। क्या इससे ज्यादा बेहतर वैश्विक क्रांति की कोई अन्य रणनीति हो सकती थी?

मजे की बात है कि सोवियत संघ समेत सारी दुनिया के कम्युनिस्टों में अपने सिद्धान्त की स्वीकार्यता दिलाने के लिए वह इसे बोल्शेविक-लेनिनवादी सिद्धान्त कहता था बल्कि खालिस बोल्शेविक-लेनिनवादी। जो व्यक्ति 1917 तक हमेशा बोल्शेविकों से अलग और बोल्शेविको ंऔर लेनिन का कट्टर विरोधी बना रहा उसने अब घोषित किया कि उसका सतत क्रांति का सिद्धान्त तो लेनिन का ही सिद्धान्त है। और अपने सिद्धान्त को लेनिन का ही सिद्धान्त बताते हुए वह लेनिन की बातें काटता रहा। सिद्धान्तों के क्षेत्र में यह हमारे पी.सी सरकार से ज्यादा बड़ी बाजीगरी थी।

सतत क्रांति का जो उसने जो संस्करण पेश किया उसमें उसने पहले की तरह ही मजदूरों-किसानों के क्रांतिकारी जनवादी अधिनायकत्व के बदले सर्वहारा अधिनायकत्व की बात कही। लेकिन उसमें उसने किसानों की भूमिका पर पहले से जोर बढ़ा दिया। इसी तरह तुरन्त ही उठाये जाने वाले समाजवादी कदम पर उसने थोड़ा जोर घटा दिया। लेकिन दोनों ही मामलों में उसने केवल जोर घटाया-बढ़ाया, मूल बात वही रखी। क्रांति के टिकाऊपन के बारे में भी अब उसने कुछ सावधानी बरतते हुए बात कही, विश्व क्रांति के अभाव में तुरंत कुचल दिये जाने की नहीं। लेकिन, जैसा कि पहले कहा गया है, इसमें उसने महत्वपूर्ण विकास यह किया कि अगड़े-पिछड़े, साम्राज्यवादी और गुलाम सभी देशों के लिए एक ही सिद्धान्त प्रस्तावित कर दिया। ''वैश्विक क्रांति'' का मुकम्मिल सिद्धान्त तैयार हो गया और वह इसका मसीहा बन बैठा। अब उसके आगे सारे ही कम्युनिस्ट अवसरवादी, सुधारवादी या राष्ट्रीय संकीर्णतावादी हो गये। एक मात्र वही सच्चा कम्युनिस्ट रह गया। ''वामपंथी'' लफ्फाजी में इस सतत क्रांति का कोई भी कम्युनिस्ट मुकाबला नहीं कर सकता था। यदि यथार्थ ट्राट्स्की के सतत क्रांति के हिसाब से नहीं चल रहा था तो क्या हुआ? गाज गिरे यथार्थ पर और उसके हिसाब से चलने वाले कम्युनिस्टों पर!

V

सोवियत संघ में समाजवाद

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, ट्राट्स्की द्वारा एक देश में समाजवाद के निर्माण की संभावना से इंकार के बावजूद 1930 के दशक में सोवियत संघ में समाजवाद का निर्माण हो गया। वह एक भौतिक यथार्थ बन गया। ट्राट्स्की इस यथार्थ से चाहे जितना चाहे भाग नहीं सकता था। वह उसके सामने मुंह बाये खड़ा था। इस यथार्थ से निपटने के लिए ट्राट्स्की ने कई नुस्खे इस्तेमाल किये । इसमें सबसे बड़ा तो यही था कि उसने समाजवादी समाज की परिभाषा, उसका मापदंड ही बदल दिया।

यह सब करते हुए ट्राट्स्की ने सोवियत समाज का अपने हिसाब से विश्लेषण किया तथा उसके प्रति अपना कार्यक्रम पेश किया। तब तक तीसरे इंटरनेशनल के खिलाफ उसने चौथा इंटरनेशनल घोषित कर दिया था और इस चौथे इंटरनेशनल के लिए उसने सोवियत संघ में राजनीतिक क्रांति का अपना कार्यक्रम प्रस्तुत किया। इसके लिए उसने एक किताब लिखी–"क्रांति के साथ गद्दारी" ट्राट्स्कीपंथियों के लिए यह किताब कम्युनिस्ट घोषणा पत्र से कम महत्व नहीं रखती।

सोवियत समाज का अपना विश्लेषण करके ट्राट्स्की ने घोषित किया कि यह न तो पूंजीवादी समाज है और न ही समाजवादी । यह दोनों के बीच का है। उसने लिखा :

> " सोवियत निजाम को संक्रमणकालीन या मध्यवर्ती परिभाषित करना **पूंजीवाद** (और इसके साथ राजकीय पूंजीवाद) और **समाजवाद** जैसे पूर्ण सामाजिक प्रवर्गों का परित्याग कर देना है। अपने आप में पूर्णतया अपर्याप्त होने के साथ यह इस गलत विचार को जन्म दे सकता है कि वर्तमान सोवियत निजाम से केवल समाजवाद की ओर संक्रमण संभव है। यथार्थ में पूंजीवाद की ओर पश्चगति भी पूर्णत:संभव है। एक ज्यादा पूर्ण परिभाषा निश्चित तौर पर जटिल और विस्तारित होगी।
>
> " सोवियत संघ पूंजीवाद और समाजवाद के बीच खड़ा एक अंतर्विरोधी समाज है जिसमें : (क) उत्पादन शक्तियां राजकीय सम्पत्ति को समाजवादी चरित्र प्रदान करने की दृष्टि से भी अपर्याप्त हैं, (ख) वंचना के कारण पैदा हुई आदिम संचय की प्रवृत्ति योजनाबद्ध अर्थव्यवस्था के असंख्य छिद्रों से फूटती रहती है; (ग) बुर्जुआ चरित्र के वितरण के नियम समाज के नये

विभेदीकरण के आधार बनते हैं; (घ) आर्थिक विकास मेहनतकशों के जीवन को धीमे-धीमे बेहतर बनाने के बावजूद एक विशेषाधिकार प्राप्त संस्तर के तेजी से पैदा होने को प्रोत्साहित करता है; (च) सामाजिक अंतरविरोधों का फायदा उठाते हुए नौकरशाही ने अपने को एक अनियंत्रित जाति में बदल लिया है जो समाजवाद के लिए परायी है; (छ) शासक पार्टी द्वारा त्याग दी गई सामाजिक क्रांति अभी भी सम्पत्ति सम्बंधों और मेहनतकश जनता की चेतना में विद्यमान है; (ज) संचित होते हुए अंतर्विरोधों का आगे विकास इसे समाजवाद या पूंजीवाद दोनों की ओर ले जा सकता है; (झ) पूंजीवाद की ओर जाने में प्रतिक्रांति को मजदूरों के प्रतिरोध को तोड़ना होगा; (ट) समाजवाद की ओर जाने के लिए मजदूरों को नौकरशाही को उखाड़ फेंकना होगा। अंतिम विश्लेषण में प्रश्न का निर्णय राष्ट्रीय और वैश्विक दोनों स्तर पर जीवित सामाजिक शक्तियों के संघर्ष से होगा।"

(Trotsky,'Revolution Betrayed',वही,Chapter-9,Page-12)

महत्वपूर्ण बात यह है कि ट्राट्स्की ने इस बात से साफ इंकार किया कि यह पूंजीवाद से समाजवाद की ओर संक्रमण करता समाज है। उसने कहा कि यह दोनों के बीच अवस्थित समाज है जो पूंजीवाद की ओर भी जा सकता है और समाजवाद की ओर भी।

पूंजीवाद और समाजवाद के बीच खड़े इस समाज में शासक वर्ग कौन है? ट्राट्स्की ने कहा कि यहां नौकरशाही शासन करती है। और वह भांति-भांति की सुविधाओं का इस्तेमाल भी करती है। लेकिन तब भी नौकरशाही को राजकीय पूंजीवाद का शासक वर्ग मानना गलत होगा। सोवियत समाज भी राजकीय पूंजीवाद नहीं है और न ही नौकरशाही इसका शासक वर्ग। नौकरशाही केवल एक सुविधा प्राप्त संस्तर है जो शासन कर रही है। वह लिखता है:

" सोवियत नौकरशाही को'राजकीय पूंजीवाद' के एक वर्ग के बतौर चित्रित करने का प्रयास आलोचना के सामने ठहर नहीं पायेगा। नौकरशाही के पास न तो शेयर हैं और न बॉण्ड। इसे अपने किसी विशिष्ट सम्पत्ति सम्बन्धों से स्वतंत्र प्रशासनिक श्रेणी क्रम की तरह भर्ती किया जाता है, प्रतिपूरित किया जाता है और नवीनीकृत किया जाता है। कोई व्यक्तिगत नौकरशाह राज्य मशीनरी में अपने शोषण के अधिकारों का अपने उत्तराधिकारियों को स्थानांतरित नहीं कर सकता। नौकरशाही अपने विशेषाधिकारों का सत्ता के दुरुपयोग के रूप में ही इस्तेमाल कर पाती है। यह अपनी आय छिपाती है। यह बहाना करती है कि एक विशिष्ट सामाजिक समूह के तौर पर यह अस्तित्वमान भी नहीं है। राष्ट्रीय आय के एक बड़े हिस्से का इसके द्वारा हस्तगतकरण सामाजिक परिजीविता के चरित्र का है। यह सारा कुछ सोवियत शासक संस्तर की स्थिति को अत्यधिक अंतर्विरोधी, कई मुहों

वाली और गरिमाहीन बना देती है इसके बावजूद कि इसकी सत्ता पूर्ण है और चाटुकारिता का धुंआ इसे छिपाता है।" (वही, Chapter-9, Page-9)

ट्राट्स्की के अनुसार अर्थव्यवस्था का चरित्र राजनीतिक सत्ता के चरित्र पर निर्भर करता है। लेकिन सोवियत संघ में राजनीतिक सत्ता नौकरशाही के हाथों में है जो खुद एक सुविधा प्राप्त संस्तर तो है लेकिन कोई वर्ग नहीं है और न ही किसी वर्ग का हिस्सा। यह नौकरशाही सर्वहारा के हाथों में हथियार की तरह भी काम करती है क्योंकि यह अपने हित में उत्पादन का राज्य के हाथों में संकेन्द्रण करती है जो प्रगतिशील कदम है। इस तरह ट्राट्स्की के हिसाब से सोवियत संघ एक विशेष अंतर्विरोधपूर्ण स्थिति में खड़ा हुआ है। ट्राट्स्की यह भी कहता है कि क्रांति को उखाड़ फेंका नहीं गया है क्योंकि तब पूंजीपति वर्ग सत्ता में आ गया होता। यहां तो निजी पूंजी को बढ़ावा देने के बदले उसका राजकीयकरण/ सामूहिकीकरण किया जा रहा है। इस तरह क्रांति को उखाड़ फेंका नहीं गया है उसके साथ केवल गद्दारी की गई हैं यह गद्दारी किसने की ? यह गद्दारी स्टालिन के नेतृत्व में नौकरशाही ने की है।

सोवियत संघ में नौकरशाही की विजय के लिए वह बार-बार थर्मिडोर का जिक्र करता है। महान फ्रांसीसी क्रांति के दौरान नवें थर्मिडोर को राब्सेपियरे को मार डाला गया और उसकी लाश को गिलोटिन पर चढ़ा दिया गया। यह फ्रांसीसी क्रांति में प्रतिक्रियावाद की विजय का प्रतीक है। इसके बाद गरीब शहरी लोगों से पूंजीपति वर्ग ने सत्ता छीन ली। थर्मिडोर का इस्तेमाल कर ट्राट्स्की ने यह दिखाने का प्रयास किया कि सोवियत संघ में भी स्टालिन के नेतृत्व में नौकरशाही ने मजदूर वर्ग के हाथ से सत्ता छीन ली और वह मजदूर वर्ग के नौकर के बदले उसका मालिक बन बैठी। ट्राट्स्की के अनुसार सोवियत संघ में विरोध पक्ष (ट्राट्स्की-जिनोवियेव-कामेनेव इत्यादि) की हार का कारण यही था कि क्रांति के बाद नौकरशाही क्रमशः हावी होती चली गई । इसके हावी होने के पीछे रूस में विश्व युद्ध और गृह युद्ध की तबाही से पैदा हुई थकान, मजदूर वर्ग की उदासीनता तथा पार्टी तंत्र पर स्टालिन जैसे लोगों की पकड़ जैसे कारक जिम्मेदार थे।

इसके साथ ही ट्राट्स्की यह भी कहता है कि क्रांतिकारी राज्य में नौकरशाही की बीमारी अनिवार्य है। यह खुद सर्वहारा की तानाशाही और राज्य से ही पैदा होती है। उसके अनुसार लेनिन भी इसका समाधान नहीं खोज पाये थे। सर्वहारा की तानाशाही की एक और खामी का जिक्र करते हुए ट्राट्स्की कहता है कि यह रचनाशीलता के लिए बाधक है। केवल सर्वहारा की तानाशाही समाप्त हो जाने पर ही रचनाशीलता के लिए संभावना पैदा होती है।

इस सबके बाद ट्राट्स्की सोवियत संघ में मुख्य अंतर्विरोध के बारे में बात करता है। वह कहता है कि सोंवियत संघ में इस समय मुख्य अंतर्विरोध संपत्ति के समाजवादी रूप और कमजोर उत्पादक शक्तियों के बीच है। वह कहता है:

> "...लेकिन एक पिछड़े देश में सम्पत्ति के समाजवादी रूपों की स्थापना तकनीक और संस्कृति के अपर्याप्त स्तर से टकराने लगी। उच्च वैश्विक उत्पादक शक्तियों और सम्पत्ति के पूंजीवादी रूप के बीच के अंतर्विरोध से खुद पैदा होने वाली अक्टूबर क्रांति ने अपनी बारी में निम्न राष्ट्रीय उत्पादक शक्तियों और सम्पत्ति के समाजवादी रूप के बीच के अंतर्विरोध का जन्म दिया।"
> (वही, Appendix, Page-6)

इस स्थिति में क्या किया जाय ? जबकि अक्टूबर क्रांति उखाड़ न फेंकी गयी हो बल्कि उसके साथ गद्दारी की गयी हो, जबकि नौकरशाही सत्तानशीन हो जो कि एक वर्ग नहीं केवल आबादी का संस्तर है, जबकि समाजवादी सम्पत्ति रूप देश में प्रधान हो तथा मुख्य अंतर्विरोध समाजवादी सम्पत्ति रूपों तथा राष्ट्रीय पैमाने पर कमजोर उत्पादक शक्तियों के बीच हो, तब क्या किया जाय? इसके लिए ट्राट्स्की एक राजनीतिक क्रांति की, अक्टूबर क्रांति के पूरक की बात करता है। वह लिखता है :

> " वह क्रांति जिसे नौकरशाही अपने खिलाफ तैयार कर रही है 1917 की अक्टूबर क्रांति की तरह सामाजिक नहीं होगी इस समय सवाल समाज के आर्थिक आधार को बदलने का, एक सम्पत्ति रूप को दूसरे से बदलने का नहीं है । इतिहास ने अन्य जगहों पर न केवल सामाजिक क्रांतियां देखी है जिन्होंने सामन्ती निजाम के बदले बुर्जुआ निजाम की स्थापना कर दी, बल्कि ऐसी राजनीतिक क्रांतियां भी देखी हैं जिन्होंने समाज के आर्थिक आधारों को नष्ट किये बिना पुराने सत्ताधारी ऊपरी संस्तरों को उखाड़ फेंका (फ्रांस में 1830 व 1848,रूस में फरवरी 1917, इत्यादि)। बोनापार्तवादी जाति को उखाड़ फेंकने के स्वभावतः ही गहरे सामाजिक परिणाम होंगे लेकिन अपने आप में यह राजनीतिक क्रांति तक सीमित होगी।
>
> " इतिहास में यह पहली बार है कि मजदूरों की क्रांति से पैदा हुआ कोई राज्य अस्तित्वमान है। जिन चरणों से यह गुजरेगा वह कहीं लिखा हुआ नहीं है। यह सच है कि सोवियत संघ के सिद्धान्तकारों और रचनाकरों ने आशा की थी कि एक पूर्णतया पारदर्शी और लचीली सोवियत व्यवस्था समाज के आर्थिक और सांस्कृतिक विकास के अनुरूप राज्य को शांतिपूर्वक अपने को रूपान्तरित करने, विलयित करने और मर जाने का रास्ता देगी। लेकिन यहां फिर जीवन उससे ज्यादा जटिल निकला जितना सिद्धान्त ने पूर्वानुमान किया था। एक पिछड़े देश के सर्वहारा

को सबसे पहली समाजवादी क्रांति करने का नसीब प्राप्त हुआ। इस ऐतिहासिक विशेषाधिकार के लिए, सारे संकेत इसी ओर हैं, उसे एक पूरक क्रांति से कीमत चुकानी होगी–इस बार नौकरशाही के निरंकुश शासन के खिलाफ। नयी क्रांति का कार्यक्रम बहुत कुछ इस पर निर्भर करेगा कि वह कब फूटती है, उस देश का स्तर क्या है तथा काफी मात्रा में अंतर्राष्ट्रीय स्थिति पर।..."(वही, **Chapter-11, Page-9)**

इस पूरक क्रांति का कार्यक्रम क्या होगा। वह होगा :

" सोवियत संघ के चरित्र को बेहतर ढंग से समझने के लिए आइये हम इसके भविष्य के बारे में दो भिन्न कल्पनाएं करें। पहले हम यह कल्पना करें कि सोवियत नौकरशाही को ऐसी क्रांतिकारी पार्टी द्वारा उखाड़ फेंका जाता है जिसके पास पुराने बोल्शेविज्म के सारे गुण हों और जो साथ ही हाल के वैश्विक अनुभव से समृद्ध हो। ऐसी पार्टी ट्रेड-यूनियनों और सोवियतों में जनवाद की पुनर्स्थापना से शुरूआत करेगी। यह सोवियत पार्टियों की स्वतंत्रता पुर्नस्थापित करने में सक्षम होगी और उसे करेगी। जनता के साथ तथा उसके शीर्ष पर यह राज्य मशीनरी की निर्मम सफाई करेगी। यह स्तरों और विभूषणों को समाप्त कर देगी, सभी प्रकार के विशेषाधिकारों को समाप्त कर देगी और श्रम के भुगतान में गैर बराबरी को अर्थव्यवस्था व राज्य मशीनरी के जीवन की आवश्यकताओं तक सीमित कर देगी । यह नवयुवकों को स्वतंत्र रूप में सोचने, सीखने, आलोचना करने और बड़े होने का स्वतंत्र अवसर प्रदान करेगी। यह मजदूर और किसान जनता की इच्छानुसार राष्ट्रीय आय के वितरण में भारी परिवर्तन करेगी। लेकिन जहां तक सम्पत्ति सम्बन्धों का मामला है, नई सत्ता को क्रांतिकारी कदमों की जरूरत नहीं होगी। यह योजनाबद्ध अर्थव्यवस्था के प्रयोग को बनाए रखेगी और आगे बढ़ायेगी। राजनीतिक क्रांति के बाद–यानी नौकरशाही को सत्ताच्युत करने के बाद–सर्वहारा को अर्थव्यवस्था में बहुत महत्वपूर्ण सुधारों की एक श्रृंखला लागू करनी होगी पर एक अन्य क्रांति नहीं।"(वही,**Chapter-9, Page-11-12)**

" यह एक शासक गुट को दूसरे से प्रतिस्थापित करने का मामला नहीं है बल्कि देश की अर्थव्यवस्था को चलाने तथा संस्कृति को निर्देशित करने के तरीके को बदलने का सवाल है। नौकरशाही एकतंत्रवाद को सोवियत जनवाद के लिए जगह खाली करनी होगी। आलोचना के अधिकार तथा चुनाव की वास्तविक स्वतंत्रता की पुनर्स्थापना देश के आगे विकास के लिए जरूरी शर्त हैं। यह सोवियत पार्टियों को, बोल्शेविक पार्टी से शुरू करके, पुनर्जीवित करने की पूर्वकल्पना करता है तथा ट्रेड-यूनियनों को भी। उद्योग में जनवाद की बहाली का मतलब मेहनतकशों के हित में योजनाओं का भारी संशोधन होगा। आर्थिक समस्याओं पर स्वतंत्र बहस-मुबाहसा नौकरशाही की गलतियों और आगे-पीछे के भारी खर्चे को कम कर देगी। सोवियतों के महंगे खेल महल, नये थियेटर तथा

दिखावटी भूमिगत मार्गों का मजदूरों के घरों की खातिर बन्द कर दिया जायेगा। 'वितरण का बुर्जुआ नियम' एकदम जरूरत तक सीमित कर दिया जायेगा तथा सामाजिक धन के बढ़ने के साथ समाजवादी बराबरी को जगह दे देगा। स्तर तुरंत खत्म कर दिये जायेंगे। विभूषण पदक भट्टी में झोंक दिये जायेंगे। नवयुवक को मौका मिलेगा कि वह स्वतंत्रतापूर्वक सांस ले, आलोचना करे, गलतियां करे और बड़ा हो। विज्ञान और कला को बेडियों से मुक्त कर दिया जायेगा और अंततः, विदेश नीति क्रांतिकारी अंतर्राष्ट्रवाद की परम्परा पर लौट आयेगी।" (वही, Chapter-11,Page-9-10)

लेकिन यह सोचना भूल होगी कि यह पूरक राजनीतिक क्रांति अकेले सोवियत संघ में हो जायेगी और फिर वहां समाजवाद कायम हो जायेगा। नहीं, यह भी विश्व क्रांति के द्वारा ही संभव होगा और यही चौथे इंटरनेशनल का ऐतिहासिक मिशन होगा:

"...यदि सुधारवादियों और "कम्युनिस्ट" नेताओं के संयुक्त तोड़-फोड़ के बावजूद पश्चिमी यूरोप का सर्वहारा सत्ता में आ जाता है तो सोवियत संघ के इतिहास में एक नया अध्याय शुरू होगा। यूरोप में क्रांति की पहली विजय सोवियत जनता में बिजली के झटके की तरह गुजरेगी, उसे खड़ा करेगी, उसकी स्वतंत्रता की भावना को ऊपर उठायेगी, 1905 व 1917 की परम्पराओं को जगायेगी, बोनापार्तवादी नौकरशाही की स्थिति को कमजोर करेगी और चौथे इंटरनेशनल के लिए उससे कम महत्व नहीं ग्रहण करेगी जितनी अक्टूबर क्रांति ने तीसरे इंटरनेशनल के लिए की। केवल इसी रूप में समाजवादी भविष्य के लिए सर्वहारा राज्य को बचाया जा सकता है।" (वही, Chapter-11,Page-10)

यह है सोवियत संघ की समस्याओं का ट्राट्स्की द्वारा प्रस्तुत विश्लेषण और उसका समाधान।

केवल ऊपरी तौर पर किया जाने वाला अवलोकन यह दिखा देता है कि समाजवादी समाज की समस्याओं का ट्राट्स्की द्वारा प्रस्तुत विश्लेषण और समाधान माओ के सिद्धान्तों से, महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रांति के सिद्धान्तों से एकदम भिन्न है। यह सही है कि ट्राट्स्की 1930 के दशक के सोवियत संघ को समाजवादी देश नहीं मानता। लेकिन इसके संदर्भ में वह समाजवादी समाजों के बारे में जितनी बातें करता है वह माओ की बातों से बिलकुल भिन्न हैं बल्कि बिलकुल विरोधी हैं।

सबसे महत्वपूर्ण बात तो यही कि उसने सोवियत संघ में मुख्य अंतरर्विरोध सम्पत्ति के समाजवादी रूपों तथा कमजोर राष्ट्रीय उत्पादक शक्तियों के बीच माना। यह माओ की विरोधी बात है और ल्यू शाओ ची और देंङ स्याओ पिंङ से मिलती है। माओ का कहना था कि समाजवाद स्थापित हो जाने के बाद समाज का मुख्य अंतरर्विरोध यह है कि हमारी अधिरचना आधार के अनुरूप नहीं है। अधिरचना का लगातार

क्रांतिकारीकरण उत्पादन सम्बन्धों के लगातार विकास का रास्ता खोलेगा। और उत्पादन सम्बन्धों में लगातार विकास उत्पादक शक्तियों के विकास को गति प्रदान करेगा। उत्पादक शक्तियों और उत्पादन सम्बन्धों के बीच अंतरर्विरोध में जरूरी यह है कि उत्पादन सम्बन्धों को और उन्नत किया जाय। केवल इसी तरह से उत्पादक शक्तियां विकसित होंगी। इसके विपरीत ल्यू शाओ ची का कहना था कि उत्पादन सम्बन्ध उन्नत हो गये हैं (समाजवाद कायम हो जाने के बाद) और अब जरूरत इस बात की है उत्पादक शक्तियों को उन्नत करने पर जोर दिया जाय। जहां तक चेतना उन्नत करने की बात है, उसके लिए आलोचना-आत्मालोचना,समाजवादी शिक्षा इत्यादि के पार्टी कार्यक्रम पर्याप्त हैं।

सोवियत संघ में खुश्चेव के जमाने में पूंजीवाद की पुनर्स्थापना होने के बाद माओ ने समाजवादी समाज की समस्याओं का जो विश्लेषण किया उसकी मुख्य बात यह थी कि समाजवादी समाज स्थापित हो जाने के बाद भी समाज में मालों का चलन कायम रहता है, मूल्य का नियम काम करता सहता है, काम के अनुसार उपभोग का बुर्जुआ अधिकार मौजूद रहता है, शहर और देहात, मजदूर और किसान तथा शारीरिक और मानसिक श्रम के बीच भेद बना रहता है (यह उत्पादन के साधनों के पूर्ण राजकीयकरण के बाद की बात है। सामूहिक फार्मों के बने रहने के कारण सोवियत संघ यहां तक भी नहीं पहुंचा था)। यह वह आर्थिक जमीन है जहां से बुर्जुआ तत्व लगातार पैदा होते रहते हैं। दूसरी ओर पुराने समाज से विरासत में प्राप्त वर्गीय समाज के विचार भी पीढ़ी-दर-पीढ़ी लम्बे समय तक कायम रहते हैं। इन सबके कारण बुर्जुआ तत्वों के पैदा होने की जमीन समाज में बनी रहती है और ये तत्व पार्टी और राज्य के कारकूनों पर असर डालते रहते हैं। यदि इन तत्वों के खिलाफ लगातार संघर्ष कर इनको समाप्त नहीं किया जाता, इनको पैदा करने वाली आर्थिक-भौतिक जमीन को लगातार सीमित नहीं किया जाता है तो इस बात की सम्भावना बनी रहती है कि ये तत्व पार्टी व राज्य में हावी हो जायें, इसकी दिशा बदल दें और पूंजीवाद लागू हो जाय।

इन सबसे बचने का एक ही तरीका है–महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रांति। पूरी अधिरचना का लगातार क्रांतिकरण किया जाय। पुराने विचारों के खिलाफ, वर्गीय विचारों के खिलाफ जंग छेड़ी जाय। जो पार्टी व राज्य कर्ता-धर्ता पूंजीवादी विचारों पर चल रहे हैं उन्हें पदों से हटा दिया जाय। उत्पादन सम्बन्धों में लगातार परिवर्तन कर उसे कम्युनिज्म की ओर बढ़ाया जाय। और यह सब करने के लिए सर्वहारा वर्ग की तानाशाही को मजबूत किया जाय।

लेकिन यह सब पार्टी के निर्देशन में ऊपर से नहीं किया जा सकता। पार्टी के ऊपर के ही तो ढेर सारे लोगों से संघर्ष है–पार्टी और राज्य में बैठे पूंजीवादी पथगामी लोगों से। यह तभी हो सकता है जब पार्टी

की व्यापक नेतृत्वकारी भूमिका के साथ आम मजदूर जन इस सब की बागडोर अपने हाथ में लें। वे न केवल पूंजीवादी पथगामियों को सत्ताच्युत करें अपितु प्रशासन और उत्पादन-प्रबन्धन का कार्य भी अपने हाथ में लें। पार्टी और राज्य नौकरशाही के खिलाफ जंग इस सबका एक हिस्सा है। कम्युनिज्म तक पहुंचने के लिए इस तरह की कई सांस्कृतिक क्रांतियों की आवश्यकता होगी। केवल कई पीढ़ियों बाद ही और कई सांस्कृतिक क्रांतियो से गुजर कर समाजवादी समाज कम्युनिज्म में रूपान्तरित होगा।

माओ की इस अवधारणा में यह कहीं नहीं है कि समाजवादी समाज में नौकरशाही की बीमारी लाइलाज है। कि सर्वहारा की तानाशाही में ही ऐसा कुछ है कि वह राज्य के जनता से अलगाव और नौकरशाही को जन्म देगा। इस संभावना को समाप्त किया जा सकता है। यह कहना कि काम अनुसार उपभोग के नियम का पालन करके वस्तुतः सर्वहारा राज्य जो कि बहुसंख्या का है, बहुसंख्या के खिलाफ अल्पसंख्या के विशेषाधिकारों की रक्षा करता है और यह अजीब दोष है, सर्वहारा तानाशाही के वास्तविक चरित्र को नजरअंदाज करना है। सर्वहारा तानाशाही है ही इसलिए कि तकनीकी कर्मचारियों को ज्यादा वेतन व सुविधाएं देते हुए भी उन्हें पूर्णतया अपने नियंत्रण में रखें, बुर्जुआ वर्ग पर नियंत्रण की तो बात ही क्या है। यह सुविधा प्राप्त अल्पसंख्या सर्वहारा तानाशाही से परे नहीं है। सर्वहारा तानाशाही को ट्राट्स्की ने कितना कम समझा है वह इससे दिखता है कि वह इसे रचनाशीलता के लिए घातक समझता है। यह सर्वहारा तानाशाही की विशुद्ध निम्न-बुर्जुआ अवधारणा है। यह लेनिन की अवधारणा के बिलकुल खिलाफ है। लेनिन के अनुसार सर्वहारा तानाशाही बहुसंख्यक मजदूर-किसान जनता को जनवाद प्रदान करती है और इस तरह उनकी रचनाशीलता को मुक्त करती है। क्रमशः बढ़ती यह रचनाशीलता कम्युनिज्म में अपने चरम पर पहुंचेगी।

स्पष्ट है कि माओ की इस लाइन का, उनके सिद्धान्त का ट्राट्स्की के उपरोक्त विचारों से कोई मेल नहीं है। ट्राट्स्की का तो इतना भर लक्ष्य है कि सोवियत पार्टी और राज्य पर ट्राट्स्कीपंथियों का कब्जा हो जाय और फिर वे विश्व क्रांति के माध्यम से सारी समस्याओं को हल कर देंगे। इसलिए वह कई सांस्कृतिक क्रांतियों की नहीं बल्कि सत्ता पर कब्जा करने के लिए पूरक राजनीतिक क्रांति की बात करता है।

इस राजनीतिक क्रांति के बाद ट्राट्स्की क्या करेगा? वह पार्टी और राज्य से नौकरशाही को बाहर कर देगा। लेकिन इसका क्या केवल इतना सा मतलब नहीं है कि वह अपने विरोधियों को बाहर कर देगा? फिर स्टालिन ने विरोधियों को, जो समाजवाद के निर्माण में बाधा बन रहे थे, बाहर कर कौन सी गलती कर दी? ट्राट्स्की पार्टी के भीतर जनवाद, सोवियतों में जनवाद तथा ट्रेड-यूनियनों में जनवाद बहाल करने की बात करता है। लेकिन केवल कम याददाश्त के लोग ही ट्राट्स्की के इस भ्रमजाल का शिकार होंगे। यह ट्राट्स्की

ही था जिसने 1921 में ट्रेड-यूनियनों के दायरे में सैनिक तौर-तरीके लागू करने का प्रयास किया था। उसी ने ट्रेड-यूनियनों को ऊपर से झकझोरने की बात कही थी और उसके निर्णयों को लेनिन को रद्द करना पड़ा था। उसी ने ट्रेड-यूनियनों को सरकारी तंत्र का हिस्सा बना देने की बात की कि सर्वहारा राज में ट्रेड-यूनियनों की स्वतंत्रता की कोई आवश्यकता नहीं है। यह ट्राट्स्की ही था जिसके बारे में लेनिन ने कहा था कि 'मसले के विशुद्ध प्रशासनिक पहलू के प्रति उनका अत्यधिक अनुराग है।' और यह आदमी जनवाद की इतनी बातें करता है!

पार्टी और सोवियतों में जनवाद बहाल करने का क्या मतलब है? इसका मतलब है पार्टी में गुटों को तथा समाज में अन्य पार्टियों को मान्यता देना। लेकिन इन दोनों को ही 1921 की 'क्रोन्साद' घटनाओं के बाद दसवीं पार्टी कांग्रेस में प्रतिबंधित कर दिया गया था। इस निर्णय में तब ट्राट्स्की की पूर्ण सहमति थी। अब ट्राट्स्की कहने लगा कि वे समय विशेष के निर्णय थे, उन्हें रद्द कर दिया जाना चाहिए। लेकिन दसवीं कांग्रेस का निर्णय कहीं नहीं कहता कि यह विशिष्ट परिस्थितियों में आपातकालीन निर्णय है। और न ही यह कि समय के साथ इसे बदल दिया जायेगा शोषक वर्गों के मताधिकार छीने जाने के समय लेनिन ने कहा था कि यह सर्वहारा तानाशाही का अनिवार्य तत्व नहीं है यानी यह मताधिकार बाद में बहाल किया जा सकता है। लेकिन उपरोक्त मामलों पर लेनिन ने दसवीं पार्टी कांग्रेस में ऐसी कोई बात नहीं कही थी।

और फिर पार्टी में गुटबाजी तथा समाज में विभिन्न पार्टियों की मौजूदगी से किसे फायदा होगा? क्या इससे पार्टी मजबूत होगी? क्या इससे सर्वहारा की तानाशाही मजबूत होगी? ट्राट्स्की कहता है कि सर्वहारा के कई संस्तर होने के चलते उसकी कई पार्टियां हो सकती हैं। तो फिर इन विभिन्न पार्टियों का लक्ष्य क्या होगा? बुर्जुआ वर्ग के विभिन्न हिस्सों में आपसी प्रतियोगिता होती है। क्या सर्वहारा के विभिन्न स्संतरों में भी ऐसी प्रतियोगिता है? और फिर सर्वहारा राज्य का उद्देश्य क्या हैं? इन संस्तरों के भेद को समाप्त करना या उन्हें बनाए रखना? यदि वे बने रहते हैं तो क्या बढ़ेंगे नहीं? क्या विभिन्न पार्टियां इन संस्तरों के भेद को बढ़ायेंगी नहीं? बुर्जुआ जनवाद की तर्ज पर सर्वहारा की कई पार्टियों की बात करना बुर्जुआ जनवाद के सामने निर्लज्ज समर्पण है।

इसी तरह पार्टी में जनवाद के लिए क्या गुटबाजी होना जरूरी है? क्या पार्टी के हर सदस्य को इजाजत नहीं होती है कि वह अपनी बात पूरी पार्टी के सामने रख सके! फिर गुटबाजी की जरूरत क्यों होगी? यदि जनवाद के लिए जो पार्टी ऐसी हो कि वह अपने सदस्यों को जनवाद न प्रदान करती हो वह गुटों को भी प्रदान नहीं करेगी। तब गुटों का मतलब जनवाद नहीं, एक पार्टी के भीतर कई पार्टी होना होगा। ऐसी

स्थिति न तो सर्वहारा पार्टी के अनुशासन को कायम रख पायेगी (लौह अनुशासन की तो बात ही क्या) और न ही सर्वहारा तानाशाही को। पार्टी के भीतर गुटबाजी की मांग सर्वहारा तानाशाही को खंडित करने वाली मांग है। यह वस्तुतः ट्राट्स्की जैसे निम्न बुर्जुआओं के सुनहरे दिनों की वापसी की मांग है जब वे 1917 के पहले पार्टी के अनुशासन से मुक्त, मुक्त विचरण करते थे और कुछ भी करने और कहने के लिए स्वतंत्र थे। लेकिन सर्वहारा की तानाशाही इस निम्न बुर्जुआ लोफरपने को बर्दाश्त नहीं कर सकती। दसवीं पार्टी कांग्रेस में लेनिन ने इसे साफ-साफ घोषित कर दिया था।

ट्राट्स्की कहता है कि वह युवाओं को मुक्त विकास का अवसर प्रदान करेगा। लेकिन युवाओं के इस विकास के तो देंङ व ल्यू भी पक्षधर थे क्योंकि यह ऊपर से पार्टी द्वारा नियंत्रित विकास होगा। ऐसा विकास तो सोवियत संघ में हो ही रहा था। क्या सांस्कृतिक क्रांति के उस युवा विकास की ट्राट्स्की अनुमति देगा जिसे बुर्जुआ वर्ग डर और घृणा से "हुड़दंग" कहता है?

कुल मिलाकर ट्राट्स्की के इस कार्यक्रम में ऐसा कुछ भी नहीं था जो समस्या का सही समाधान प्रस्तुत करे। इसका उद्देश्य तो केवल ट्राटस्कीपंथियों को सत्तानशीन करना तथा निम्न बुर्जुआ स्वेच्छाचारिता को उन्मुक्तता प्रदान करना था।

यहां तक आते-आते अंतःपार्टी संघर्ष के द्वारा सोवियत पार्टी और सोवियत राज्य में हावी हो जाने की ट्राट्स्की की आशा खत्म हो गई। सोवियत संघ में औद्योगिकीकरण और सामूहिकीकरण के सफल अभियान ने, जिसकी उसने 1929 तक कोई कल्पना नहीं की थी, उसे हताश ही नहीं बदहवास कर दिया। उसे लगने लगा कि स्टालिन और उसके समर्थकों को अब पराजित कर पाना तथा पार्टी व राज्य से हटा पाना असंभव है। अब उसने सोवियत संघ और सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी के खिलाफ खुला युद्ध छेड़ दिया। ट्राट्स्कीपंथियों द्वारा समूचे सोवियत संघ में तोड़फोड़ की बाढ़ आ गई। हत्याओं के प्रयास किये गये और कई सफल भी हुए। इन सबसे बढ़ कर इन्होंने साम्राज्यवादियों के साथ संयुक्त मोर्चा कायम कर लिया और सोवियत राज्य के घोषित दुश्मन बन गये। ट्राट्स्की 1940 में अपनी मृत्यु तक इस सब का संचालन करता रहा।

ऐसा नहीं है कि 1927 में पार्टी से निकाले जाने के पहले ट्राट्स्की ने पार्टी और सोवियत राज्य विरोधी गतिविधियां नहीं की थी लेकिन पार्टी से निकाले जाने और खासकर देश से निकाले जाने के बाद उसमें गुणात्मक फर्क आ गया। अब वह खुलेआम साम्राज्यवादियों के हाथों में खेलने लगा तथा किसी भी तरह सोवियत राज्य पर कब्जा करना उसका लक्ष्य बन गया। इस दिशा में एक ऊंची छलांग उसने चौथे इंटरनेशनल की स्थापना की घोषणा करके लगाई। सचेत प्रतिक्रांतिकारी तो वह पहले ही बन गया था, अब वह सोवियत

राज्य के विरूद्ध अपराध करने में सारी सीमाएं तोड़ने लगा। ट्राट्स्की के पार्टी से निकाले जाने के बाद से खासकर 1930 के दशक में ट्राट्स्कीवाद मजदूर आंदोलन में एक प्रवृत्ति के बदले प्रतिक्रांतिकारी धारा बन गया। जिसका उद्देश्य था साम्राज्यवादियों के साथ मिलकर सोवियत राज्य को नष्ट करना। सोवियत संघ में पूरक राजनीतिक क्रांति की बात करके उसने उसे केवल सैद्धान्तिक जामा पहनाया था। ट्राट्स्की और साम्राज्यवाद दोनों ही अब सोवियत समाजवाद के मामले में एक ही जमीन पर खड़े थे–न केवल वस्तुगत तौर पर बल्कि आत्मगत तौर पर। 1905 में प्रस्तुत एक गलत लाइन ने आगे बढ़ कर अब यह रूप ग्रहण कर लिया था, इसने ट्राट्स्कीवाद को मजदूर आंदोलन में एक प्रवृत्ति से पहले मजदूर राज के घोषित दुश्मन की स्थिति में पहुंचा दिया था।

छोटी सी गलत लाइन पर भी यदि अड़े रहा जाय तो उसकी कितनी भयानक परिणति होती है यह ट्राट्स्की और ट्राट्स्कीवाद ने बखूबी प्रदर्शित किया।

VI

कुछ अन्य मसले

(क) अक्टूबर क्रांति में भूमिका

1923 में लेनिन के बीमार पड़ने पर पार्टी का नेतृत्व हथियाने के इरादे से ट्राट्स्की ने खुद और अपने समर्थकों से अक्टूबर क्रांति में अपनी भूमिका को बढ़ा-चढ़ा कर प्रस्तुत करना शुरू कर दिया। उसने परोक्षतः यह प्रचारित करना शुरू किया कि अक्टूबर क्रांति के दो ही प्रणेता और नेता थे– लेनिन और ट्राट्स्की। अब चूंकि लेनिन नहीं हैं, इसलिए एकमात्र ट्राट्स्की ही बचता है जो पार्टी और राज्य का कार्यभार संभाल सकता है। खासकर उसने स्टालिन पर निशाना साधा जो उस समय पार्टी के महासचिव थे। उसने यह जतलाने की कोशिश की जैसे अक्टूबर क्रांति में स्टालिन की कोई भूमिका थी ही नहीं।

ट्राट्स्की की मंशा किसी से छिपी नहीं रही। खासकर अक्टूबर क्रांति के इतिहास के उसके द्वारा तोड़-मरोड़ से सभी आश्चर्यचकित थे। स्टालिन ने उसको जवाब दिया कि अक्टूबर क्रांति के वास्तविक प्रेरक और नेता लेनिन तथा पार्टी की केन्द्रीय समिति थी। इसे झुठलाना इतिहास को झुठलाना है।

स्टालिन की बातों के जवाब में ट्राट्स्की हद से आगे बढ़ गया। उसने बोल्शेविक पार्टी की केन्द्रीय समिति की क्रांति में भूमिका को खारिज कर दिया। बाद में उसने "रूसी क्रांति का इतिहास" किताब के तीसरे खंड के परिशिष्ट में इस सम्बन्ध में यह लिखा :

"...यदि हम उस समय की केन्द्रीय समिति के लोगों को थोड़ा नजदीक से नहीं देखते तो हम न तो अक्टूबर के नेतृत्व के मेकेनिक्स को समझ पायेंगे और न ही नवीनतम गुरुभ्रष्टी किंवदन्तियों के मेकेनिक्स को।

" पार्टी के नेता लेनिन ने जो कि सभी के लिए प्राधिकार थे लेकिन जैसा कि तथ्य बताते हैं, 'तानाशाह' होने से बहुत दूर थे, चार महीनों से पार्टी के कामों में प्रत्यक्ष हिस्सा नहीं लिया था और कई सारे रणकौशलात्मक मामलों में इसके तीखे विरोध में थे। पुराने बोल्शेविक केन्द्र में सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण नेता जिनोवियेव और कामोनेव थे जो लेनिन से बहुत नीचे थे लेकिन अपने से बाद वालों से बहुत ऊपर। अक्टूबर से पहले जिनोवियेव व कामेनेव लेनिन व केन्द्रीय समिति के बहुमत के दृढ़ विरोध में थे। इसने इन दोनों का कार्यकर्ताओं की हैसियत से दूर कर दिया। पुराने बोल्शेविकों में स्वेर्दलोव तेजी से उभर कर ऊपर आये थे लेकिन वे उस समय केन्द्रीय समिति में नये थे। उनकी संगठनकर्ता की प्रतिभा केवल बाद में ही जाकर पूरी विकसित हुई, सोवियत राज्य के निर्माण के काल में। दर्जेर्जिस्की, जो हाल ही में पार्टी में भर्ती हुए थे, अपनी क्रांतिकारी मानसिकता के लिए जाने जाते थे व उन्होंने स्वतंत्र सैद्धान्तिक प्राधिकार का कोई दिखावा नहीं किया। बुखारिन, रीकोव व नोगिन मास्को में रह रहे थे। बुखारिन को प्रतिभाशाली किन्तु गैर भरोसेमंद सिद्धान्तकार माना जाता था। रीकोव व नोगिन विद्रोह के विरोधी थे। लोमोव, बाबुनोव व मिल्युतिन को बड़े सवालों को हल करने में शायद ही कोई ध्यान में रखता हो, इसके अलावा लोमोव मास्को में काम कर रहे थे और मिल्युतिन रास्ते में थे। जोफे और उरूत्स्की निर्वासन काल से ही ट्राट्स्की से नजदीकी से जुड़े हुए थे और उनके साथ मिलकर काम कर रहे थे। नौजवान स्मिल्गा फिनलैंड में काम कर रहे थे। यह संरचना और आंतरिक स्थिति पर्याप्त रूप से दिखाती है कि लेनिन द्वारा प्रत्यक्ष रूप से नेतृत्व संभालने से पहले पार्टी हेडक्वाटर वह भूमिका जरा भी न तो निभा सकता था और न निभाया जो इसने बाद में ग्रहण की। कार्यवृत यह दिखाते हैं कि सबसे महत्वपूर्ण सवाल–सोवियतों की कांग्रेस, गैरिसन, सैनिक क्रांतिकारी समिति–केन्द्रीय समिति में अग्रिम रूप से नहीं उठाये गये और न ही इसकी पहलकदमी से पैदा हुए बल्कि वे स्मोल्नी में सोवियत की व्यवहारिक कार्यवाहियों से पैदा हुए और सोवियत नेताओं के मंडल में हल किये

गये–अक्सर ही स्वेर्दलोव की भागीदारी से।" (L.Trotsky,'The History of Russian Revolution,' Victor Gollaneg Ltd, London,1933,Vol-III, Appendix-I, Page-358-359, अनुवाद हमारा)

इस तरह उसने बोल्शेविक पार्टी की पूरी केन्द्रीय समिति को खारिज कर दिया। यहां पर ट्राट्स्की की चाल काबिले गौर है। उसने क्रांति में केन्द्रीय समिति की भूमिका को खारिज करने के लिए उसे व्यक्तियों में विभाजित कर दिया और फिर बताया कि फलां व्यक्ति सत्ता पर कब्जे का विरोधी था, फलां व्यक्ति निष्क्रिय था फलां व्यक्ति गिनती में नहीं आता था इत्यादि। इसके बाद क्या बचता है? इसके बाद बचती है पेत्रोग्राद सोवियत और उसके अध्यक्ष ट्राट्स्की। क्रांति का असली नेता! लेनिन को तो वह झुठला नहीं सकता था।

ट्राट्स्की के इस झूठ के बहकावे में केवल गैर पार्टी लोग और व्यक्तिवादी विश्लेषण पद्धति के शिकार लोग ही आ सकते हैं। सभी जानते हैं कि लेनिन 1903 से ही, पार्टी की दूसरी कांग्रेस से ही कितना ज्यादा पार्टी मैन रहे हैं, वे कितना पार्टी अनुशासन को महत्व देते रहे हैं और खुद वे किस हद तक सामूहिक काम, टीम वर्क के पक्षधर थे। लेनिन के रहते यह संभव नहीं था कि क्रांति जैसा बड़ा काम तो क्या छोटा मसला भी केन्द्रीय समिति के बिना या उसे किनारे लगाकर हल किया जाय। और यदि ऐसा ही था तो सितम्बर-अक्टूबर के पूरे दो महीने क्यों लेनिन केन्द्रीय समिति को विद्रोह के लिए लगातार कहते रहे और केन्द्रीय समिति के न मानने पर असंतोष व्यक्त करते रहे? उन्होंने केन्द्रीय समिति को किनारे लगा कर ट्राट्स्की की मदद से सितंबर में ही विद्रोह क्यों नहीं आयोजित कर दिया ? क्या केन्द्रीय समिति समेत नीचे की सभी कमेटियों की शिरकत के बिना पार्टी क्रांति में अपनी भूमिका निभा सकती थी? और यदि पार्टी क्रांति में सक्रिय न होती तो सोवियतों का क्या होता? इस सबसे भिन्न और इसका उल्टा केवल ट्राट्स्की जैसा व्यक्ति ही सोच सकता है जो 1903 से 1917 के बीच स्वच्छंद या "गुटों से ऊपर" रहा, जो अभी 1917 के मध्य में ही बोल्शेविक पार्टी में शामिल हुआ था। केवल उसके जैसा व्यक्ति ही पार्टी के केन्द्रीय निकाय के मुकाबले व्यक्ति को प्रधानता दे सकता है।

बाकी तो साफ है कि किसी निकाय का मूल्यांकन उसके सामूहिक व्यवहार पर किया जाता है। उसे खण्ड-खण्ड व्यक्तियों में बांट कर नहीं। खुद अक्टूबर क्रांति में ही जिनोवियेव व कामेनेव ने विद्रोह का विरोध किया लेकिन विद्रोह के दौरान जिम्मेदार पदों पर रहे। इसको न समझना कम से कम बोल्शेविक पार्टी के मामले में अक्षम्य है।

इसके साथ ही ट्राट्स्की पार्टी के केन्द्रीय समिति के मुकाबले पेत्रोग्राद सोवियत की भूमिका को बढ़ा-चढ़ा कर प्रस्तुत करता है जिसका वह अध्यक्ष था। ये केवल उन्हें धोखा दे सकता है जो कम्युनिस्ट

पार्टियों और वह भी भूमिगत पार्टी की भूमिका से परिचित न हों, पार्टी व जन संगठनों के वास्तविक सम्बन्ध से परिचित न हों। पेत्रोग्राद सोवियत के पीछे पूरी पार्टी काम कर रही थी। पेत्रोग्राद सोवियत में सितम्बर में बोल्शेविक पार्टी का बहुमत ट्राट्स्की के भाषणों से नहीं हासिल हुआ बल्कि बोल्शेविक पार्टी के कार्यकर्ताओं के फैक्टरियों, मजदूरों की बस्तियों और सैनिक बैरकों में काम से हासिल हुआ यह काम ट्राट्स्की नहीं स्टालिन और स्वेर्दलोव जैसे लोग अंजाम दे रहे थे। इसी तरह विद्रोह का जितना काम पेत्रोग्राद सोवियत के खुले मंच से हो रहा था उससे कई गुना काम पर्दे के पीछे से हो रहा था। लेकिन ट्राट्स्की को कोई नहीं समझा सकता। वह यूं ही अति आत्मविश्वासी नहीं था।

(ख) पार्टी की संरचना पर मेंशेविक अवस्थिति

कम्युनिस्ट पार्टी कैसी हो जब इस पर रूसी सामाजिक मजदूर पार्टी की 1903 में आयोजित दूसरी कांग्रेस में मतभेद उठ खड़ा हुआ तो ट्राट्स्की ने लेनिन के खिलाफ मेंशेविकों का पक्ष लिया। वह पार्टी की संरचना के सवाल पर मार्तोव के साथ जा खड़ा हुआ। यही नहीं उसने लेनिन पर आरोप लगाया कि वह राब्सेपियरे की तरह व्यक्तिगत तानाशाही कायम करना चाहता है। उसने लेनिन को मैक्समिलियन लेनिन के नाम से संबोधित करना शुरू कर दिया।

पार्टी की संरचना पर बात करते हुए उसने 1904 में ही लेनिन पर आरोप लगाया था कि यदि लेनिन के हिसाब से पार्टी बनी तो सर्वहारा वर्ग के बदले पार्टी की तानाशाही कायम हो जायेगी, फिर पार्टी में केन्द्रीय समिति की तानाशाही कायम हो जायेगी, और अन्त में केन्द्रीय समिति के एक व्यक्ति की तानाशाही कायम हो जायेगी। यानी लेनिन के हिसाब से पार्टी बनाने का मतलब है एक व्यक्ति की तानाशाही के लिए रास्ता खोलना, मैक्समिलियन लेनिन के लिए रास्ता खोलना।

यही ट्राट्स्की जब 1917 में बोल्शेविक पार्टी में शामिल हुआ तो उसके बारे में उसने 1919 में लिखा कि वह 1904 -06 में नहीं समझ पाया था कि बोल्शेविक एक वास्तविक क्रांतिकारी पार्टी का निर्माण कर रहे हैं जो सर्वहारा की तानाशाही के कार्यभार को अंजाम दे सकती है ('परिणाम व संभावनाएं' की भूमिका) जबकि मेंशेविक अवसरवाद की तरफ जा रहे थे। लेकिन ट्राट्स्की की 1919 की बातें बहलाने वाली बातें थीं। जैसा कि हमने देखा उसने न केवल 1919-21 के दौर में जमकर गुटबाजी की बल्कि बाद में फिर गुटबाजी की अनुमति के लिए संघर्ष करने लगा अंत में उसे अपने कार्यक्रम में ही शामिल कर लिया। यानी वह कभी

भी बोल्शेविकों की तरह लौह अनुशासन में बंधी पार्टी का पक्षधर नहीं रहा। वह इस मामले में शुरू से अंत तक पक्का मेंशेविक बना रहा। उसका जीवनी लेखक आइसक द्यौशेर तो दसवीं पार्टी कांग्रेस में गुटों को प्रतिबंधित करने के फैसले पर उसकी सहमति को उसकी सबसे बड़ी गलती मानता है।

यह महत्वपूर्ण है कि ट्राट्स्की ने 1919 में आत्मालोचना की कि वह पहले नहीं देख पाया कि बोल्शेविक एक क्रांतिकारी पार्टी का निर्माण कर रहे हैं तथा मेंशेविक अवसरवादी पार्टी का। उसने अपनी सबसे बड़ी गलती दोनों के बीच समझौतावादी बनने को माना। पर समझौतावादी बनने से बड़ी गलती उसकी पार्टी सदस्य के मापदंड पर, पार्टी सीमाओं को धुंधला करने पर तथा पार्टी अनुशासन को भंग करने वाली गुटबाजी में शामिल होने की थी। ट्राट्स्की के अनुसार इस बीच बोल्शेविकों ने लौह अनुशासन वाली पार्टी, एक क्रांतिकारी पार्टी बना ली तथा इसलिए वह इसमें शामिल हो गया। लेकिन बोल्शेविकों ने यह लौह अनुशासन वाली क्रांतिकारी पार्टी कैसे बनायी? उन्होंने ठीक उन्हीं कार्यनीतिक नीतियों और सांगठनिक उसूलों पर चल कर बनायी जिसका ट्राट्स्की 1903 से 1917 के बीच लगातार विरोधी रहा। कार्यनीतिक नीतियों के लिए उसने बोल्शेविकों के पतन की भविष्यवाणी की और सांगठनिक उसूलों के लिए लेनिन को तानाशाह घोषित किया। यानी ट्राट्स्की की चलती तो बोल्शेविक पार्टी जैसी क्रांतिकारी पार्टी का निर्माण नहीं होता। या तो पार्टी मेंशेविकों की तरह बनती या उन्हीं की पार्टी का कोई दूसरा संस्करण। इस तरह ट्राट्स्की की गलती मात्र दोनों पक्षों के बीच समझौतावादी रुख ग्रहण करने की नहीं थी। वह सीधे-सीधे उन चीजों के खिलाफ था जिसके कारण लेनिन 'लेनिन' और बोल्शेविक 'बोल्शेविक' बने। इस सबको कुछ इस तरह प्रस्तुत करना मानो बोल्शेविक पार्टी यूं ही बन गयी उसी बौद्धिक चातुरी का नमूना है जिसके लिए ट्राट्स्की कुख्यात है। सच बात यह है कि ट्राट्स्की उन सारे ही सांगठनिक उसूलों के खिलाफ था जिनके कारण बोल्शेविक बोल्शेविक थे। यह 1917 के पहले भी था और बाद में भी। लेनिन ने जब दसवीं पार्टी कांग्रेस से पार्टी में गुटबाजी को प्रतिबंधित कराया तो उसका मुख्य निशाना ट्राट्स्की ही था। ट्राट्स्की ने अपना सांगठनिक उसूल कभी नहीं छोड़ा–पेटी बुर्जुआ बुद्धिजीवी की स्वेच्छाचारिता का उसूल। 1924 -27 के बीच तो उसने हद ही कर दी जब बार-बार कसमें खाकर भी वह गुटबाजी पर फिर-फिर उतरता रहा। अंततः उसे पार्टी से बाहर निकालने के अलावा कोई रास्ता नहीं बचा और वह 1927 में पार्टी से निकाल दिया गया। ट्राट्स्की पार्टी से बाहर अपने सतत क्रांति के सिद्धान्त के कारण नहीं निकाला गया, ये सिद्धान्त तो 1924 के अन्त में ही पार्टी में पराजित हो गये थे। वह निरंतर पार्टी विरोधी कार्यवाहियों के कारण, पार्टी उसूलों को न मानने के कारण,

पार्टी में निरंतर गुटबाजी करने और तोड़-फोड़ करने के कारण निकाला गया। 1919 की उसकी आत्मालोचना कितनी 'सच्ची' थी!

(ग) हमेशा मध्यमार्गी

यह "आश्चर्यजनक" किन्तु सत्य है कि ट्राट्स्की हमेशा मध्यमार्गी बना रहा। जब भी कठिन क्षण आते थे वह बीच की अवस्थिति ग्रहण कर लेता था। "आश्चर्यजनक" केवल इसलिए कहा जा रहा है कि उसने लगभग हमेशा ही "वामपंथी" लफ्फाजी में अपने को प्रस्तुत किया।

1903 से 1917 के बीच वह मेंशेविकों व बोल्शेविकों के बीच झूलता रहा हालांकि उसने अपने को दोनों से ऊपर दिखाने की कोशिश की। क्रांति की कार्यनीति के मामले में, जैसा कि हमने पहले देखा, उसने बोल्शेविकों से भी ज्यादा ''वामपंथी'' अवस्थिति ग्रहण की लेकिन जिसका सारतः अर्थ मेंशेविकों की अवस्थिति थी। बाद में, उसने स्वीकार किया कि 1903-17 के बीच बोल्शेविकों और मेंशेविकों के बीच समझौता कराने वाले की भूमिका ग्रहण कर उसने सबसे बड़ी गलती की थी। यह स्वीकारोक्ति सही हो या गलत, यह उसकी मध्यमार्गी अवस्थिति को दिखाती है।

प्रथम विश्व युद्ध के दौरान जब बोल्शेविकों ने अपने देश की सरकार के हार का नारा दिया तथा मेंशेविकों ने अपनी सरकार के पक्ष में अवस्थिति ली तो ट्राट्स्की ने फिर बीच की जगह ले ली। वह न हार, न जीत के नारे लगाने लगा। इसी तरह 1918 में जब जर्मनी के साथ अपमानजनक शान्ति समझौते की बात आयी तो लेनिन के समझौते के पक्ष और "वामपंथियों" के विपक्ष के मुकाबले उसने बीच की स्थिति ग्रहण की। उसने कहा कि हमें न तो जर्मनी से समझौता करना चाहिए और न ही लड़ना चाहिए। हमें अपनी तरफ से युद्ध समाप्त घोषित कर देना चाहिए और सैनिकों को सीमा से बुला लेना चाहिए।

हद तो तब हो गई जब उसने 1930 के दशक में सोवियत समाज के बारे में बीच की स्थिति ले ली। उसने सोवियत समाज को न तो पूंजीवादी माना, न समाजवादी। यहां तक कि संक्रमणशील भी नहीं कहा। उसने उसे पूंजीवाद और समाजवाद के बीच का घोषित कर दिया।

इस तरह ट्राट्स्की एक ऐसा मध्यमार्गी था जो अक्सर ''वामपंथी'' लफ्फाजी में अपने को छिपाता था लेकिन ऐन मौके पर दक्षिणपंथियों के साथ जाकर खड़ा हो जाता था। दक्षिणपंथी होते हुए भी अपने को गुटों, पक्षों से ऊपर तथा ज्यादा क्रांतिकारी दिखाने का यह अच्छा तरीका था।

(घ) बिना सेना के जनरल

ट्राट्स्की बिना सेना के जनरल था। वह कार्यकर्तांविहीन, पार्टीविहीन नेता था। 1917-27 के काल को छोड़कर जब वह बोल्शेविक पार्टी में शामिल हो गया था, वह सारी जिन्दगी ऐसा ही रहा।

1903 -17 के बीच वह दिखाता यही रहा कि वह बोल्शेविकों-मेंशेविकों दोनों से अलग और ऊपर है। लेकिन हकीकत यह थी कि वह अपना कोई पार्टी गुट नहीं बना पाया। वह हमेशा प्रयास करता रहा कि वह दोनों संघर्षरत पक्षों में समझौता कराकर नेता बन जाय, लेकिन सफल नहीं हो सका। इसके कारण उसकी राजनीतिक तथा सांगठनिक लाइन में थे। वह खुद पार्टी के अनुशासन में बंध कर काम करने में इतना अक्षम था कि वह पार्टी बना ही नहीं सकता था। वह केवल बनी-बनाई पार्टी का नेता बन सकता था।

1927 में सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी से निकाले जाने के बाद न तो वह अपनी कोई पार्टी बना पाया और न ही तथाकथित चौथे इंटरनेशनल को खड़ा कर पाया। तथाकथित चौथे इंटरनेशनल से जुड़े हुए सारे लोग एक भी जनाधार वाली पार्टी नहीं बना पाये जबकि उसी समय दुनिया के लगभग सभी देशों में (जहां सर्वहारा था) जन आधार वाली कम्युनिस्ट पार्टियां कायम हो गई थी। । ट्राट्स्कीपंथी हर जगह छोटे-मोटे महत्वहीन गुट मात्र थे जिनका एक मात्र काम कम्युनिस्ट पार्टियों के आस-पास भिनभिनाना, उन्हें परेशान करना था। आम मजदूरों में काम कर उन्हें पूंजीपतियों के खिलाफ खड़ा करने के बदले वे कम्युनिस्ट पार्टियों से जुड़े लोगों को कौमिंटर्न और सोवियत संघ के खिलाफ खड़ा करने में सारा जोर लगाते थे। इस तरह वे खुलेआम पूंजीपति वर्ग के चाकर की भूमिका में उतर आते थे।

यह कोई अजीबोगरीब बात नहीं है कि ट्राट्स्की से जुड़ने वाले ट्राट्स्कीपंथी न केवल जल्दी ही उसका साथ छोड़ जाते थे बल्कि वे मार्क्सवाद को भी त्याग देते थे। लगातार कौमिंटर्न और सोवियत संघ विरोधी बातें करते-करते उनका मार्क्सवाद पर से ही भरोसा उठ जाता था। और यह स्वाभाविक बात थी। दुनिया के सारे मजदूर और पूंजीपति दोनों ही सोवियत संघ को समाजवादी देश मानते थे और इसके हिसाब से उसके प्रति अपना रुख तय करते थे। अब मजदूरों को यह समझाने पर कि सोवियत संघ मजदूरों का देश नहीं

है, समाजवादी देश नहीं है मजदूर का समाजवाद से दूर हटना स्वाभाविक है। यही हाल पेटी बुर्जुआ बुद्धिजीवियों का भी था। वे सच्चाई से लड़कर कब तक टिक सकते थे ? अंततः 1940 में जब वह अपने ही एक समर्थक के हाथों मारा गया तब सही मायनों में वह 'जनरल विदाउट आर्मी' का नमूना था।

हां, यह यही है कि वह सारी जिंदगी अपने सतत क्रांति के सिद्धान्त पर अडिग रहा। लेकिन इसका क्या मतलब था उसे एक फिल्म की कहानी से समझा जा सकता था। पुराने समय में एक हिंदी फिल्म बनी थी राजाओं मंत्रियों पर आधारित। यानी उसकी कथा 1947 के पहले के भारतीय समाज पर आधारित थी। इसमें एक छोटे से राज्य का मंत्री है जो देवताओं के सामने मानव बलि में विश्वास करता है। वह एक अनुष्ठान में मानव बलि देना चाहता है लेकिन जिस व्यक्ति को वह शिकार बनाना चाहता है वह हाथ से निकल जाता है। अन्य कोई भी उसके हत्थे नहीं चढ़ता। लेकिन वह अपने सिद्धान्त का, अपने विश्वास का सच्चा था। इसलिए जब कोई नहीं मिला तो उसने तलवार से अपनी गर्दन काटकर खुद ही अपना सिर दोनों हाथों से देवी के सामने चढ़ा दिया। वह अपने विश्वास का सच्चा था।

ट्राट्स्की भी अपने सतत क्रांति के सिद्धान्त का सच्चा था!

(च) ट्राट्स्की के बारे में लेनिन का मूल्यांकन

राजनीतिक वाद-विवाद के दौरान की जाने वाली टिप्पणियों के अलावा (जो कई बार बहुत तीखी होती थीं) लेनिन ने दो बार ट्राट्स्की का मूल्यांकन पेश किया, एक बोल्शेविक पार्टी में शामिल होने से पहले, दूसरा शामिल होने के बाद। वे दोनों इस प्रकार हैं:

> "रूस में मार्क्सवादी आंदोलन में भाग लेने वाले बुजुर्ग ट्राट्स्की को भली-भांति जानते हैं और उनके लाभार्थ ट्राट्स्की के बारे में कुछ कहने की जरूरत नहीं । परन्तु नयी पीढ़ी के मजदूर उन्हें नहीं जानते और इसलिए उनके बारे में कहना आवश्यक है, इसलिए कि ट्राट्स्की विदेशों में पांचों ग्रुपों के लाक्षणिक व्यक्ति हैं और ये पांचों ग्रुप भी दरअसल विसर्जनवादियों तथा पार्टी के बीच बेपेंदी के लोटे की तरह लुढ़कते रहते हैं।
>
> " पुराने 'इस्क्रा' के दिनों में (1901-03) इन लुढ़कने वालों को, जो अर्थवादियों से 'ईस्क्रा'-पंथियों की ओर और फिर वापस छलांग लगाया करते थे, "तूशिनों के स्थानांतरणकारी"

नाम दिया गया था (रूस में बेचैनी भरे जमाने में उन सिपाहियों को दिया गया नाम, जो एक खेमे को छोड़कर दूसरे खेमे में जा पहुंचते थे।)

" जब हम विसर्जनवाद की बात करते हैं तो हम एक ऐसी निश्चित वैचारिक धारा की बात करते हैं जो नाना वर्षों के दौरान बड़ी हुई, जिसकी जड़ें मार्क्सवाद के बीस वर्षों के इतिहास में मेंशेविकवाद और अर्थवाद से जुड़ी हुयी हैं, जो एक निश्चित वर्ग–उदारतावादी बुर्जुआ वर्ग–की नीति तथा विचारधारा से जुड़ी हुयीं है।

" धड़ों से ऊपर होने को दावा करने के लिए "तूशिनों के स्थानांतरणकारियों" के पास एकमात्र आधार यह है कि वे अपने विचार आज एक धड़े से, तो कल दूसरे धड़े से "उधार लेते हैं"। ट्राट्स्की 1901-03 में कट्टर 'इस्क्रा'-पंथी थे और रियाजानोव ने 1903 की कांग्रेस में उनकी भूमिका को "लेनिन का सोटा" नाम दिया था। 1903 के अन्त में ट्राट्स्की कट्टर मेंशेविक थे,यानी वह 'इस्क्रा' पंथियों को छोड़कर अर्थवादियों से जा मिले; उन्होंने कहा कि "पुराने 'इस्क्रा' और नये 'इस्क्रा' के बीच खाई है"। 1904-05 में उन्होंने मेंशेविकों का साथ छोड़ दिया और ढुलमुल स्थिति अपना ली, अभी पल में मार्तीनोव (अर्थवादी) के साथ सहयोग करते, तो पल में "स्थायी क्रांति" के उपहासास्पद वामपंथी सिद्धान्त का प्रचार करते। 1906-07 में वह बोल्शेविकों के पास पहुंचे और 1907 के बसंत काल में उन्होंने रोजा लुग्जेमबुर्ग के साथ अपनी ऐक्यबद्धता का ऐलान किया।

" विघटन की अवधि में, लम्बे 'गैर धड़ेबंदी वाले' ढुलमुल पन के बाद फिर दांये पक्ष में पहुंच जाते हैं और अगस्त 1912 में विसर्जनवादियों के साथ गुट में प्रवेश करते हैं। अब उन्होंने फिर विसर्जनवादियों का साथ छोड़ दिया है, हालांकि **सारतः** वह उनके ही विचारों को दुहराते हैं।

" इस तरह के व्यक्ति अतीत की ऐतिहासिक विरचनाओं के, उस जमाने के मलबे की लाक्षणिकता हैं, जब रूस में व्यापक मजदूर आंदोलन अभी सुषुप्तावस्था में था, जब प्रत्येक छोटे ग्रुप के पास अपने को एक धारा, ग्रुप या धड़े के रूप में, संक्षेप में दूसरों के साथ ऐक्यबद्ध होने के बारे में बातचीत करने वाली "शक्ति" के रूप में पेश करने के लिए "काफी गुंजाइश" होती थी।

" मजदूरों की तरूण पीढ़ी के लिए ये अच्छी तरह जानना जरूरी है कि उनका उस समय ठीक-ठीक किससे वास्ता पड़ रहा है, जब ऐसे लोग अकल्पनीय दावों के साथ उनके सामने आते हैं, जो **या तो** पार्टी निर्णयों को, जिन्होंने 1908 से ही विसर्जनवाद के प्रति हमारे रुख को निर्धारित तथा निर्दिष्ट किया था, **अथवा** रूस में समकालीन मजदूर आंदोलन के, जिसने उपरोक्त निर्णयों की पूर्ण स्वीकृति के आधार पर बहुसंख्या की **एकता** वस्तुतः कायम की है, अनुभव को ध्यान में रखने

के लिए नितांत अनिच्छुक हैं।" (लेनिन,'एकता की चीख पुकार की आड़ में एकता का उल्लंघन',1914, वही, खण्ड-4 पृष्ठ-300-301, जोर मूल में)

" ट्राट्स्की जैसा कि रेलवे की जन-कमिसारियत के प्रश्न के सम्बन्ध में केन्द्रीय समिति के विरुद्ध उनके संघर्ष से सिद्ध हो चुका है, केवल असाधारण योग्यता के लिए ही विशिष्ट नहीं है। वह खुद, शायद मौजूदा केन्द्रीय समिति में सबसे योग्य व्यक्ति हैं, परन्तु जरूरत से ज्यादा आत्मविश्वासी हैं और मसले के विशुद्ध प्रशासनिक पहलू के प्रति उनका अत्यधिक अनुराग है।''(लेनिन, 'कांग्रेस के नाम पत्र', 1922, वही, खण्ड-10, पृष्ठ-307)

बातें स्पष्ट हैं।

VII

ऐतिहासिक पश्चदृष्टि

रूसी और विश्व क्रांति में ट्राट्स्की और ट्राट्स्कीवाद की तात्कालिक (वस्तुगत और सचेत, प्रत्यक्ष तथा परोक्ष) क्रांति विरोधी भूमिका के अलावा इसका एक ऐतिहासिक आयाम भी है। आज हम पश्चदृष्टि की सुविधा से इसे चिह्नित कर सकते हैं।

बीसवीं सदी का पूरा इतिहास क्रांति के केन्द्र के पूरब की ओर, विकसित देशों से पिछड़े देशों में और फिर औपनिवेशिक तथा अर्ध-औपनिवेशिक देशों की ओर खिसकने का इतिहास है। मार्क्स-एंगेल्स के जमाने तक यही माना जाता रहा कि क्रांतियों का केन्द्र पश्चिमी यूरोप है। उन्नीसवीं सदी में वस्तुगत तौर पर था भी यही। लेकिन बिना किसी के नजर आये यह केन्द्र धीमे-धीमे पूरब की ओर खिसकने लगा और बीसवीं सदी की शुरूआत में रूस में आ गया। उस समय काउत्स्की से लेकर रूसी सामाजिक-जनवादी तक अपनी क्रांतिकारी अन्तर्चेतना से इसे महसूस कर रहे थे तथा इस प्रक्रिया को सूत्रित करने का प्रयास कर रहे थे। लेकिन केवल लेनिन ही इसे अपनी साम्राज्यवाद की थीसिस के माध्यम से सूत्रित करने में कामयाब हो सके। उन्होंने इसे साम्राज्यवाद की सबसे कमजोर कड़ी के रूप में चिह्नित किया जिसमें साम्राज्यवादी मोर्चा टूट जायेगा और क्रांति शुरू हो जायेगी।

लेकिन पूरब के जनगण में क्रांतिकारी जागरण और उनके क्रांति में खिंचकर आ जाने की बात सूत्रित कर लेने के बाद भी लेनिन सोचते थे कि यह क्रांति साथ ही देर-सबेर पश्चिमी विश्व को भी अपनी जद में ले लेगी और अंततः साम्राज्यवाद-पूंजीवाद के दिन लद जायेंगे। इसमें बहुत ज्यादा समय नहीं लगेगा।

लेकिन वस्तुतः कुछ और हो रहा था। वैश्विक पूंजीवाद में उस समय भीषण संकट मौजूद था और वह उसे ध्वस्त करने की ओर ले जा सकता था। प्रथम विश्व युद्ध से लेकर द्वितीय विश्व युद्ध तक यह प्रज्ज्वलनशील स्थिति लगातार बनी रही। 1900 से पहले के हुए पूंजीवादी विकास के फलस्वरूप पैदा हुए साम्राज्यवाद में जो भांति-भांति के तनाव और असंतुलन मौजूद थे वे क्रांतिकारी परिवर्तन की मांग कर रहे थे। लेकिन इसमें एक दूसरी संभावना भी मौजूद थी कि यदि यह संकट क्रांति के द्वारा हल नहीं हुआ तो विश्व युद्धों के विध्वंस के फलस्वरूप संतुलन हासिल कर यह संकट हल हो सकता था। एकत्रित हुआ दबाव निकल सकता था।

वस्तुतः हुआ भी यही । दूसरे इंटरनेशनल के मजदूर नेताओं की गद्दारी ने पश्चिमी देशों में क्रांति नहीं होने दी और दो भीषण विश्व युद्धों की तबाही के बाद पूंजीवादी व्यवस्था हाल-फिलहाल एक नया संतुलन पाने में कामयाब हो गयी। संकट के दौरान और संकट के बाद दूसरे इंटरनेशल के अवसरवादी नेताओं ने, सुधारवादियों ने पूंजीवादी व्यवस्था को चलाने का जिम्मा अपने ऊपर ले लिया। दूसरे विश्व युद्ध के बाद वे कल्याणकारी राज्य के प्रस्तोता और प्रबन्धक-संचालक के तौर पर ये लगभग सारे ही पूंजीवादी देशों में सत्तासीन हो गये। क्रांति से गद्दारी कर पूंजीवाद को संचालित करने वाली मजदूर आंदोलन की यह सुधारवादी धारा समकालीन इतिहास की धारा बन गई। लेनिन के हवाले से हम यह जानते हैं कि यह धारा कुछ नेताओं के दिमाग की उपज नहीं थी, खुद साम्राज्यवाद के मेकेनिज्म में ही इसके आधार मौजूद थे–अति मुनाफे और अभिजात मजदूर वर्ग के रूप में।

लेकिन इसके साथ ही इतिहास की एक दूसरी धारा भी चलती रही क्रांति की धारा। यह रूस में बोल्शेविकों के रूप में पैदा हुयी और रूसी क्रांति से आगे बढ़ी। जब दूसरे इंटरनेशनल के सुधारवादी नेताओं की गद्दारी के कारण पश्चिमी यूरोप में क्रांति नहीं हुयी तब भी उसने पूर्वी यूरोप में अपने लिए रास्ता पाया और औपनिवेशिक व अर्ध-औपनिवेशिक देशों में आगे बढ़ चली। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद जहां पश्चिमी पूंजीवादी देश भयानक तनाव और असंतुलन समाप्त होने के कारण शान्ति- स्थिरता की ओर बढ़े वहीं ये गुलाम देश क्रांति के भंवर में खिंच आये–राष्ट्रीय मुक्ति के भंवर में। तीन दशकों के भीतर उपनिवेशवाद तार-तार हो गया। बीसवीं सदी की शुरूआत से विश्व पूंजीवाद में पैदा हुआ तनाव और असंतुलन पश्चिम में एक तरह से हल हुआ तो पूरब में दूसरी तरह से। पश्चिम में यह विध्वंस और सुधार से हल हुआ तो पूरब में क्रांतियों और सुधार से। बीसवीं सदी का शुरूआती तीन-चौथाई इतिहास यही है।

इतिहास की इन दोनों धाराओं के प्रस्तोता अलग-अलग थे और उनके तर्क अलग-अलग थे। सुधारवादी धारा के लोग यह तर्क प्रस्तुत करते हुए कि समाज अभी समाजवादी क्रांति के लिए तैयार नहीं हुआ है (पश्चिमी यूरोप भी नहीं) पूंजीवाद के सामने समर्पण करते रहे और उसके प्रबन्धकर्ता बनते रहे। दूसरी ओर क्रांतिकारी धारा के लोग इतिहास को आगे बढ़ाने के लिए सारा जोर लगाते रहे (1900 से लेकर 1923 तक लेनिन की क्रांति की कार्यनीति तथा बाद में कम्युनिस्ट पार्टियों व कौमिंटर्न का इस पर अमल)। चूंकि दोनों धाराएं इतिहास की वस्तुगत धाराएं थी इसलिए दोनों ने अपना-अपना संवेग प्राप्त किया। यदि पश्चिम में सुधारवादी हावी होते गये तो पूरब में क्रांतिकारी। दूसरा इंटरनेशनल तथा बाद में इसका संशोधित संस्करण समाजवादी लेवर इंटरनेशनल एक धारा बनता गया तो तीसरी इंटरनेशनल दूसरी धारा। दोनों ने ही इतिहास में अपनी भूमिका निभाई। पहले ने संकटग्रस्त पूंजीवाद को संकट से उबारने में तथा स्थायित्व प्रदान करने में तो दूसरे ने पिछड़े देशों में क्रांति कर और उन्हें सभ्यता की परिधि में लाने में, उन्हें समाजवाद की ओर धकेलने में। पहली इतिहास की जड़ता के सामने समर्पण कर रही थी या उसमें योगदान कर रही थी तो दूसरी इतिहास की जड़ता को बलपूर्वक तोड़ने का प्रयास कर रही थी। पहली इतिहास के विशाल कामों से घबराकर पीछे हट रही थी तो दूसरी इतिहास को आगे धकेल रही थी, इतिहास को अभी एक नयी मंजिल में पर पहुंचा रही थी जहां से वह लम्बी छलांग लगा सके। रूस में ये दोनों धाराएं मेंशेविक-बोल्शेविक के रूप में थीं तो वैश्विक पैमाने पर दूसरे और तीसरे इंटरनेशनल के रूप में ।

ट्राट्स्की की त्रासदी यह थी कि वह न तो पहली धारा के साथ था और न ही दूसरी धारा के साथ। वह दोनों से अलग और दोनों से ऊपर था इसलिए इतिहास में वह कहीं नहीं था। वह दोनों से ऊपर रहने के प्रयास में कलाबाजियां खाते हुए पहली धारा (समर्पणवादी धारा) के साथ जा मिलता था।

जो हश्र रूस में ट्राट्स्की का हुआ वही वैश्विक पैमाने पर ट्राट्स्कीवाद का हुआ। 1903 -17 के दौरान ट्राट्स्की निरर्थक इधर-उधर ढुलकता रहा। वह रूस की क्रांति में तभी कोई भूमिका निभा पाया जब वह बोल्शेविकों के साथ था। लेकिन बोल्शेविकों में शामिल होकर भी उसने अपनी मध्यमार्गी लाइन नहीं छोड़ी और यह उसके पतन का कारण बनी। स्टालिन सोवियत पार्टी में इसलिए विजयी रहे कि वे इतिहास की क्रांतिकारी धारा के साथ थे। ट्राट्स्की इसलिए पराजित हो गया कि वह ऐसा मेंशेविक था जो क्रांति के उफान में बोल्शेविक पातों में शामिल हो गया था। वह बोल्शेविकों की तरह अपने दम पर ही क्रांति को आगे बढ़ाने की हिम्मत नहीं रखता था। वह यूरोपीय क्रांति पर लगातार निर्भर करता था जिसके न होने पर उसी तरह समपर्ण कर देता था जैसे मेंशेविक।

1903-17 के दौरान ट्राट्स्की ने मेंशेविकों-बोल्शेविकों दोनों से अलग होने का दिखावा किया लेकिन वह वस्तुतः समर्पणवादी मेंशेविकों के साथ था। 1927 के बाद ट्राट्स्कीपंथियों ने दूसरे और तीसरे इंटरनेशनल दोनों से अलग होने का दिखावा किया लेकिन वे वस्तुतः समर्पणवादी दूसरे इंटरनेशनल के साथ थे–वैश्विक क्रांति के नारे की आड़ में। रूसी क्रांति में ट्राट्स्की के पास एक "शानदार" सिद्धान्त था– बोल्शेविकों से ज्यादा "क्रांतिकारी" लेकिन इसका कोई नाम लेवा नहीं था, उसके पास कोई संगठन नहीं था। इसी तरह ट्राट्स्कीवाद भी एक "शानदार" सिद्धान्त था तीसरे इंटरनेशनल से ज्यादा "क्रांतिकारी" लेकिन उसकी भी नामलेवा कोई पार्टी नहीं थी। रूसी क्रांति में ट्राट्स्की बोल्शेविकों और खासकर लेनिन की आलोचना से अपना अस्तित्व साबित करता रहा, ट्राट्स्कीवाद तीसरे इंटरनेशनल और खासकर स्टालिन की आलोचना से। ट्राट्स्की रूसी क्रांति में असफल साबित हुआ (मध्य 1917 में बोल्शेविक पांतों में शामिल होने से पहले) तो ट्राट्स्कीवाद वैश्विक क्रांति में। लेनिन और बोल्शेविकों के प्रति शत्रुता के कारण ट्राट्स्की रूसी क्रांति के लिए घातक तथा वस्तुगत तौर पर क्रांति का गद्दार था, ट्राट्स्कीवाद तीसरे इंटरनेशनल और स्टालिन के प्रति शत्रुता के चलते वैश्विक क्रांति में सचेत गद्दार बन गया जिसका नेतृत्व सीधे ट्राट्स्की ने किया–चौथे इंटरनेशनल का गठन करके। ट्राट्स्की ने रूसी क्रांति को बहुत नुकसान पहुंचाया तो ट्राट्स्कीवाद ने वैश्विक क्रांति को। ट्राट्स्की बम-बम करने वाला लेकिन नकली बहादुर था तो ट्राट्स्कीवाद एक "शानदार" सिद्धान्त जिसमें कोई दम न था।

दो अन्य कारणों से भी ट्राट्स्कीवाद इतिहास की गति से बेमेल था और इसलिए किनारे ठेल दिया गया।

ट्राट्स्कीवाद अमूर्त अंतर्राष्ट्रीयतावादी था। ट्राट्स्की ने 1905 में ही अपने सतत क्रांति के सिद्धान्त में अंतर्राष्ट्रीय क्रांति का सिद्धान्त प्रतिपादित किया–रूस की क्रांति केवल तभी टिक सकती थी जब वह अंतर्राष्ट्रीय क्रांति बन जाती। लेकिन इतिहास ने दिखाया कि यह दौर अंतर्राष्ट्रीय क्रांतियों का नहीं राष्ट्रीय क्रांतियों का दौर था। यह दोहरे अर्थ में था। एक तो विभिन्न देशों में क्रांतियां एक साथ नहीं बल्कि अलग-अलग होनी थीं यानी इस तरह अंतर्राष्ट्रीय नहीं बल्कि राष्ट्रीय होनी थीं चाहे उसके अंतर्राष्ट्रीय आयाम कितने भी हों। दूसरे, राष्ट्रीय मुक्ति क्रांतियों को, सर्वहारा क्रांतियों का नहीं बल्कि जनवादी क्रांतियों का (जो सर्वहारा के नेतृत्व होने पर समाजवाद की ओर जा सकती थीं।) एक पूरा दौर सामने था। ट्राट्स्की ने 1915 में भले राष्ट्रीय क्रांतियों को कालातीत बता दिया हो पर राष्ट्रीय मुक्ति का सवाल उसके बाद भी पचास साल से ज्यादा तक बना रहा। (बदले हुए रूप में और अवशेष के तौर पर वह आज भी मौजूद है)। सही मायने में

राष्ट्रीय मुक्ति का सवाल तो प्रथम विश्व युद्ध के बाद ही एजेण्डे पर आया और दूसरे विश्व युद्ध के बाद हल हुआ।

इस अमूर्त अंतर्राष्ट्रवाद का हामी बन कर, सभी से ज्यादा क्रांतिकारी बनकर ट्राट्स्की और ट्राट्स्कीवाद फर्जी क्रांतिकारी बन गया और इतिहास की ठोस धारा से पूरी तरह कट गया। और जब इतिहास की यथार्थ गति ने उसके सिद्धान्तों की अमूर्तता की कलई खोल दी, उसे बेपर्दा कर दिया तो वह इतिहास की गति के खिलाफ खड़ा हो गया। वह सोवियत समाजवाद और राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलनों का विरोधी बन गया क्योंकि वे उसकी सतत क्रांति के सूत्र के हिसाब से नहीं चल रहे थे। अतिक्रांतिकारिता क्रांति विरोध में रूपान्तरित हो गई।

यही बात विशिष्ट तौर पर रूसी क्रांति के संदर्भ में भी हुयी। जैसा कि सभी क्रांतियों का इतिहास दिखाता है, क्रांतिकारियों के बीच शुरूआती एकता क्रांति के विकास के साथ भंग हो जाती है। जैसे-जैसे क्रांति आगे बढ़ती है पहले के बहुत सारे क्रांतिकारी यथास्थितिवादी, प्रतिक्रियावादी या यहां तक कि प्रतिक्रांतिकारी बन जाते हैं। इसकी वजह यह है कि क्रांति के आगे का विकास उन वर्ग हितों से टकराने लगता है जिनका वे प्रतिनिधित्व करते हैं। व्यक्तिगत तौर पर यह उनके सिद्धान्तों और धारणाओं से टकराने लगता है और कम ही होते हैं जो क्रांति के विकास के साथ अपने सिद्धान्त या धारणाएं बदल लेते हैं। यही नहीं क्रांति का आगे विकास अनदेखी कठिनाइयों से टकराता है और उनसे पार पाने के सवाल पर क्रांतिकारियों में मतभेद खड़े हो जाते हैं। कठिनाइयां जितनी ज्यादा होती हैं, रास्ता जितना विषम और अवरुद्ध होता है, मतभेद उतने तीखे होते हैं। इसमें ऐसा भी होता है कि बहुत सारे क्रांतिकारी कठिनाइयों से घबराकर हताश हो जाते हैं और पीछे हट जाते हैं या हटने लगते हैं। इन स्थितियों में क्रांति का आगे विकास मतभेदों पर बलपूर्वक काबू पाने से, ढुलमुलपन को बलपूर्वक कुचलने से, कायरता पर दृढ़तापूर्वक विजय पाने से ही होता है। ऐसे में ढेरों नेता जो ढुलमुलपन या कायरता का परिचय दे रहे होते हैं क्रांति उन्हें किनारे लगा देती है या अंततः कुचल देती है। केवल इसी तरह से वह अपना रास्ता साफ करती है और आगे बढ़ती है। इसमें यह अंतर्निहित है कि जिन नेताओं को कुचला जा रहा है वे क्रांति के गद्दार बन जायें और प्रतिक्रियास्वरूप प्रतिक्रांतिकारियों से जा मिलें।

रूसी क्रांति में भी यही हुआ। जनवादी क्रांति तक मेंशेविक भी क्रांति के साथ थे, यहां तक कि समाजवादी क्रांतिकारी भी। लेकिन उसके बाद उन्होंने आगे बढ़ने से इंकार कर दिया। तब बोल्शेविक इन्हें कुचल कर आगे बढ़े। लेकिन क्रांति के आगे बढ़ने पर, क्रांति की पहले से अनदेखी कठिनाइयों से टकराने पर

स्वयं बोल्शेविकों के भीतर तीखे मतभेद उठ खड़े हुए। ब्रेस्त लितोव्स्क पर मतभेद तथा नाना प्रकार के ग्रुप–मजदूर विरोध ग्रुप, जनवादी केन्द्रीयता ग्रुप इत्यादि–सब इसी की अभिव्यक्ति थे। मतभेद और संघर्ष इतने तीखे थे कि दसवीं पार्टी कांग्रेस को गुटबाजी को प्रतिबंधित कर इस पर काबू पाना पड़ा। और यह सब हो रहा था लेनिन जैसे सर्वमान्य नेता के होने के बावजूद।

और जब लेनिन नहीं रहे तथा समाजवादी निर्माण की चुनौतियां जब और ज्यादा ठोस रूप में सामने आयीं तो पार्टी के भीतर मतभेद और ज्यादा तीखे हो गये। 1924 से 1928 तक पूरा काल समाजवादी समाज के निर्माण की दिशा तय करने के सवाल पर पार्टी के भीतर भीषण संघर्ष का काल था। विभिन्न तर्कों को लेकर विभिन्न नेता समाजवादी समाज के निर्माण की दिशा में आगे बढ़ने से इंकार करने लगे। पहले ट्राट्स्की, फिर जिनोवियेव-कामेनेव तथा अंततः बुखारिन-तोम्स्की-रीकोव। ये सारे न केवल आगे बढ़ने से इंकार करने लगे बल्कि आगे बढ़ने में रोड़ा बन गये। अंततः तो इन्होंने समाजवादी निर्माण का प्रत्यक्ष विरोध करने का रास्ता अपना लिया था इस तरह सोवियत संघ के सत्ताच्युत पूंजीपति वर्ग और अंतर्राष्ट्रीय साम्राज्यवाद से जा मिले। वे प्रतिक्रांतिकारी बन गये और क्रांति ने इनके साथ प्रतिक्रांतिकारियों जैसा ही व्यवहार किया।

बोल्शेविक पार्टी में लेनिन के बाद स्टालिन ही क्रांति को आगे उसकी मंजिल तक ले जाने की क्षमता रखते थे और उसे ले गये। ट्राट्स्की और ट्राट्स्कीवादियों की नजर में स्टालिन चाहे जितने प्रतिभाहीन हों, लेकिन स्टालिन ही वह व्यक्ति थे जो रूसी क्रांति की कठिनाइयों से घबराकर पीछे नहीं हटे और जिन्होंने लेनिन के सिद्धान्तों पर दृढ़तापूर्वक खड़े रहकर इतिहास की चुनौतियों का मुकाबला किया। बोल्शेविक पार्टी और स्वयं इतिहास ने स्टालिन को चुना क्योंकि वे ही क्रांति के कार्यभारों को अंजाम देने के लिए सबसे उपयुक्त थे। जब इतिहास को उपयुक्त व्यक्ति की जरूरत थी वह निकल आया।

ट्राट्स्की के साथ बिलकुल उल्टा था। वह 1905 से ही अपने को रूसी क्रांति का मसीहा मान बैठा और इस तरह विश्व क्रांति का भी क्योंकि ट्राट्स्कीवाद के अनुसार रूसी क्रांति को अंतर्राष्ट्रीय क्रांति बन जाना था। उसके बाद उसने इसी भाव के साथ व्यवहार किया। लेकिन जब बोल्शेविकों द्वारा सत्ता ग्रहण के बाद वास्तविक कठिनाइयां सामने आयीं तो वह सर्वथा अयोग्य साबित हुआ। हर मोर्चे पर उसने समर्पणवाद का परिचय दिया इसको जायज ठहराने के लिए उसने अपने सतत् क्रांति के पुराने सिद्धान्त को विकसित कर वैश्विक क्रांति का मुकम्मिल सिद्धान्त बना लिया। सिद्धान्त तो मुकम्मल हो गया लेकिन वह क्रांति का नहीं बल्कि पलायन का सिद्धान्त साबित हुआ। और जब उसकी कायरता और पलायन का रास्ता सोवियत संघ में समाजवादी निर्माण ने अवरूद्ध कर दिया तो वह सोवियत समाजवाद का, सोवियत क्रांति का दुश्मन बन बैठा।

ऐसे में क्रांति के सामने इसके सिवाय कोई रास्ता नहीं था कि वह उसके सिद्धान्तों को कुचल कर, स्वयं उसे किनारे ठेल कर आगे बढ़े। व्यक्तिगत तौर पर स्वयं ट्राट्स्की क्रांति द्वारा कुचले जाने से इसलिए बच गया कि वह पहले ही देश से निर्वासित कर दिया गया था। लेकिन निर्वासन में भी वह नहीं बच पाया । वहां वह मोहभंग का शिकार हुए अपने ही एक अनुयाई के हाथों मारा गया।

ऐसा था ट्राट्स्की और ऐसा था ट्राट्स्कीवाद!

■ ■ ■

परिशिष्ट :

सतत् क्रांति क्या है? मूलभूत प्रस्थापनाएं

('सतत क्रांति' पुस्तक का दसवां और अंतिम अध्याय)

मुझे उम्मीद है कि इस पुस्तक के अंत में, दुहराव से डरे बिना, अपने प्रधान निष्कर्षों को यदि मैं संक्षेप में सूत्रित करने का प्रयास करता हूं तो पाठक मना नहीं करेंगे।

1- सतत क्रांति का सिद्धान्त अब सभी मार्क्सवादियों से अत्यधिक ध्यानाकर्षण की मांग करता है क्योंकि वर्ग और विचारधारात्मक संघर्ष ने इस सवाल को रूसी मार्क्सवादियों के पुराने राय-मतभेदों की यादों के दायरे से पूर्णतया और अंततः ऊपर उठाकर आम तौर पर अंतर्राष्ट्रीय क्रांति के चरित्र, उसके आंतरिक संबन्धों और तौर-तरीकों के प्रश्न में रूपान्तरित कर दिया है।

2- देर से बुर्जुआ विकास करने वाले देशों, खासकर औपनिवेशिक और अर्ध-औपनिवेशिक देशों के मामले में सतत क्रांति का सिद्धान्त यह बताता है कि **जनवाद** और **राष्ट्रीय मुक्ति** हासिल करने के उनके कार्यभारों का पूर्ण और असल समाधान केवल तभी सोचा जा सकता है जब सर्वहारा वर्ग का अधिनायकत्व गुलाम राष्ट्र और सबसे बढ़कर किसान जनता को नेतृत्व प्रदान करे।

3- न केवल कृषि बल्कि राष्ट्रीय सवाल भी किसान समुदाय को, जो पिछड़े देशों में अत्यधिक बहुसंख्या होता है, जनवादी क्रांति में बहुत महत्वपूर्ण स्थिति प्रदान कर देता है। किसान समुदाय के साथ सर्वहारा वर्ग के संश्रय के बिना जनवादी क्रांति के कार्यभार हल नहीं हो सकते, यहां तक कि वे सही रूप में उठ भी नहीं सकते। लेकिन इन दो वर्गों का संश्रय राष्ट्रीय उदार बुर्जुआ के प्रभाव के खिलाफ समझौताविहीन संघर्ष के सिवाय किसी अन्य तरीके से हासिल नहीं किया जा सकता।

4- अलग-अलग देशों के क्रांति के शुरूआती चरणों में चाहे जो हो, सर्वहारा और किसान समुदाय के बीच क्रांतिकारी संश्रय केवल कम्युनिस्ट पार्टी में संगठित सर्वहारा हिरावल के राजनीतिक नेतृत्व में ही संभव है। इसका मतलब है कि जनवादी क्रांति की विजय केवल सर्वहारा वर्ग के अधिनायकत्व के द्वारा ही संभव है जो अपने को किसान समुदाय के साथ संश्रय पर आधारित करता है, सबसे पहले जनवादी क्रांति के कार्यभारों को हल करता है।

5- ऐतिहासिक तौर पर मूल्यांकन करें तो बोल्शेविज्म का पुराना नारा–'सर्वहारा और किसान समुदाय का जनवादी अधिनायकत्व'– वस्तुतः सर्वहारा, किसान समुदाय और उदार बुर्जुआ के ऊपर चिह्नित सम्बन्ध को अभिव्यक्त करता था। यह अक्टूबर के अनुभव द्वारा प्रमाणित हो चुका है। लेकिन लेनिन के पुराने सूत्र ने अग्रिम में ही इस समस्या का समाधान पेश नहीं किया कि क्रांतिकारी ब्लाक के भीतर सर्वहारा और किसान समुदाय के बीच आपसी सम्बन्ध क्या होंगे। दूसरे शब्दों में, सूत्र जान-बूझकर एक बीजगणितीय गुण लिए रहा जो ऐतिहासिक अनुभव की प्रक्रिया में ज्यादा निश्चित अंकगणितीय मात्राओं से प्रतिस्थापित हो जाता। लेकिन ऐतिहासिक अनुभव ने दिखाया, और कुछ इस तरह कि किसी भी तरह के गलत व्याख्याओं की कोई गुंजाइश नहीं बची, कि किसान समुदाय की चाहे जितनी भी क्रांतिकारी भूमिका हो, यह कभी भी स्वतंत्र भूमिका नहीं हो सकती और नेतृत्वकारी भूमिका तो और भी नहीं। किसान या तो मजदूर का या बुर्जुआ का अनुसरण करता है। इसका मतलब यह है कि 'सर्वहारा और किसान समुदाय का जनवादी अधिनायकत्व' केवल इसी रूप में संभव है कि **यह सर्वहारा वर्ग का अधिनायकत्व हो जो अपने नीछे किसान जनता को ले जा सके।**

6- अपने वर्गीय सारतत्व में सर्वहारा अधिनायकत्व से भिन्न सर्वहारा और किसान समुदाय का जनवादी अधिनायकत्व केवल तभी हासिल किया जा सकता है जब एक ऐसी **स्वतंत्र क्रांतिकारी** पार्टी का गठन किया जा सके जो किसानों के और आम तौर पर निम्न पूंजीवादी- जनवाद के हितों को अभिव्यक्त करती हो–एक ऐसी पार्टी जो इस या उस हद तक सर्वहारा की मदद से सत्ता पर कब्जा कर सकती हो और अपना क्रांतिकारी कार्यक्रम निर्धारित कर सकती हो। जैसा कि समूचा आधुनिक इतिहास दिखाता है, खासकर रूस का पिछले पच्चीस सालों का इतिहास, एक स्वतंत्र किसान पार्टी की रचना के रास्ते में अनुल्लंघनीय बाधा है पेटी बुर्जुआ की आर्थिक और राजनीतिक स्वतंत्रता का अभाव तथा तीखा आंतरिक विभाजन। इस कारण से पेटी बुर्जुआ (किसान समुदाय) का ऊपरी हिस्सा सभी निर्णायक मामलों में, खासकर युद्ध और क्रांति में, बड़े बुर्जुआ के साथ चला जाता है, निचला हिस्सा सर्वहारा के साथ जाता है, बीच का हिस्सा दोनों छोरों में से एक को चुनने के लिए बाध्य होता है। केरेन्स्कीवाद और बोल्शेविक सत्ता के बीच में, क्वोमितांङ और सर्वहारा वर्ग के अधिनायकत्व के बीच में, कोई मध्यवर्ती स्थिति न तो है और न ही हो सकती है यानी मजदूरों और किसानों का कोई जनवादी अधिनायकत्व नहीं।

7- कौमिंटर्न द्वारा पूरब के देशों पर सर्वहारा और किसान समुदाय का जनवादी अधिनायकत्व के नारे को थोपने का प्रयास, जिसे अंतिम तौर पर बहुत पहले ही रिक्त कर दिया गया है, केवल प्रतिक्रियावादी प्रभाव ही पैदा करेगा। जिस हद तक इस नारे को सर्वहारा वर्ग के अधिनायकत्व के नारे के बरखिलाफ पेश किया जाता है उस हद तक यह सर्वहारा के राजनीतिक तौर पर पेटी बुर्जुआ जनता में विलीन हो जाने में मदद करता है और इस तरह यह राष्ट्रीय बुर्जुआ के आधिपत्य के लिए सबसे अनुकूल स्थितियां तैयार करता है और इसके परिणामस्वरूप जनवादी क्रांति ध्वस्त हो जाती है। कौमिन्टर्न के कार्यक्रम में इस नारे को शामिल किया जाना मार्क्सवाद और बोल्शेविज्म की अक्टूबर परम्परा के साथ सीधी गद्दारी है।

8- सर्वहारा वर्ग का अधिनायकत्व जो जनवादी क्रांति के नेता के तौर पर सत्तानशीन हुआ है, वह अनिवार्यतः और बहुत जल्दी ही ऐसे कार्यभारों से रूबरू होता है जिन्हें बुर्जुआ सम्पत्ति अधिकारों में तीखी कटौती के जरिये ही पूरा किया जा सकता है। जनवादी क्रांति सीधे समाजवादी क्रांति में विकसित हो जाती है और इस तरह **सतत** क्रांति बन जाती है।

9- सर्वहारा द्वारा सत्ता पर विजय क्रांति को पूरा नहीं करती, बल्कि इसे केवल शुरू करती है। समाजवाद का निर्माण केवल राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय पैमाने पर वर्ग संघर्ष के आधार पर ही संभव है। वैश्विक स्तर पर पूंजीवादी सम्बंधों के अत्यधिक प्रभुत्वशाली होने की स्थिति में यह संघर्ष अनिवार्यतः ही विस्फोटों को जन्म देगा–आंतरिक तौर पर गृहयुद्ध और वाह्य तौर पर क्रांतिकारी युद्ध। इसी में समाजवादी क्रांति का सतत चरित्र निहित है इस बात से स्वतंत्र कि वह एक पिछड़ा देश है, जिसने अभी कल ही अपनी जनवादी क्रांति सम्पन्न की है या कि वह पुराना पूंजीवादी देश है जिसमें जनवाद और संसदवाद का एक पूरा युग बीत चुका है।

10. राष्ट्रीय सीमाओं के भीतर समाजवादी क्रांति के पूरा होने के बारे में सोचा भी नहीं जा सकता। बुर्जुआ समाज में संकट का एक बुनियादी कारण यह है कि इसके द्वारा पैदा की गई उत्पादक शक्तियां अब राष्ट्र-राज्य के फ्रेमवर्क से सामंजस्य नहीं बैठा सकतीं। इससे एक ओर तो साम्राज्यवादी युद्ध पैदा होते हैं और दूसरी और एक बुर्जुआ संयुक्त राज्य यूरोप का उटोपिया। समाजवादी क्रांति राष्ट्रीय स्तर पर शुरू होती है, अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अपने को उद्घाटित करती है और वैश्विक स्तर पर पूरी होती है। इस तरह समाजवादी क्रांति एक नये और व्यापक अर्थ में सतत क्रांति बन जाती हैः यह केवल हमारे समूचे ग्रह पर नये समाज की अंतिम विजय में ही पूर्णता हासिल करती है।

11- वैश्विक क्रांति के विकास का ऊपर प्रस्तुत रेखाचित्र समाजवाद के लिए ''परिपक्व'' या "अपरिपक्व" देशों के उस सवाल को निरस्त कर देता है जो कौमिन्टर्न के वर्तमान कार्यक्रम के पंडिताऊ और निर्जीव वर्गीकरण से निकलता है। जहां तक कि पूंजीवाद ने एक वैश्विक बाजार, एक वैश्विक श्रम विभाजन और वैश्विक उत्पादक शक्तियां पैदा की हैं, इसने समूचे तौर पर वैश्विक अर्थव्यवस्था को समाजवादी रूपान्तरण के लिए भी तैयार किया है।

अलग-अलग देश इस प्रक्रिया से भिन्न-भिन्न गति से गुजरेंगे। पिछड़े देश कुछ निश्चित स्थितियों में, सर्वहारा वर्ग के अधिनायकत्व पर विकसित देशों से पहले पहुंच सकते हैं लेकिन वे समाजवाद तक उनसे बाद में पहुंचेंगे।

एक ऐसा पिछड़ा औपनिवेशिक या अर्ध-औपनिवेशिक देश जिसका सर्वहारा किसान समुदाय को एकजुट करने और सत्ता ग्रहण करने के लिए अभी पूरी तरह तैयार नहीं है, वह जनवादी क्रांति को पूरा करने में अक्षम है। इसके विपरीत जिस देश में जनवादी क्रांति के परिणामस्वरूप सर्वहारा के हाथ में सत्ता है, उसमें अधिनायकत्व और समाजवाद का भाग्य अपने अंतिम विश्लेषण में न केवल बल्कि उतना ज्यादा राष्ट्रीय उत्पादक शक्तियों पर निर्भर नहीं करता जितना कि अंतर्राष्ट्रीय समाजवादी क्रांति के विकास पर।

12-एक देश में समाजवाद का सिद्धान्त, जो अक्टूबर के विरुद्ध प्रतिक्रिया के खमीर पर पैदा हुआ, एकमात्र ऐसा सिद्धान्त है जो सुसंगत तरीके से और बिलकुल अंत तक सतत क्रांति के सिद्धान्त का विरोध करता है।.....

(L.Trotsky,'Permanant Revolution & Result and prospects', internet edition,File://G:\ Library\ archive\ Trotsky\ Works\ 1931-tpv\pr10, htm, अनुवाद हमारा, जोर मूल में)